मैकडावल एण्ड कम्पनी (मैसर्स) लिमिटेड

बनाम

वाणिज्य-कर अधिकारी

(17 अप्रैल, 1985)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी, ई० एस० वेंकटरामय्या और रंगनाथ मिश्र)

आन्ध्र प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1968—धारा 2(10) (सपठित आन्ध्र प्रदेश आसवनी नियम, 1981 में यथा संशोधित नियम 76, 79)—आबकारी शुल्क का संदाय—उत्पादक द्वारा अपने विक्रयावर्त में आबकारी शुल्क की रकम शामिल न करके विक्रय-कर से बचना—अधिनियम की उक्त धारा और संशोधित नियमों के अधीन आबकारी शुल्क का संदाय करना उत्पादक की प्राथमिक और अनन्य विधिक बाध्यता है और यदि किसी पारस्परिक समझौते या व्यवस्था के द्वारा आबकारी शुल्क का संदाय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तो यह मात्र उत्पादक की ओर से उसकी विधिक बाध्यता को पूरा करने से अधिक कुछ नहीं है।

आन्ध्र प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1968—धारा 2(10) [सपठित आन्ध्र प्रदेश साधारण विक्रय-कर अधिनियम, 1957 की धारा 2(ध)]—विक्रय-कर प्रयोजनार्थ आबकारी शुल्क की प्रकृति—यद्यपि आबकारी-शुल्क का संदाय पारस्परिक समझौते या व्यवस्था के अधीन उत्पादक की ओर से क्रेता या किसी अन्य व्यक्ति ने कर दिया है, फिर भी आबकारी शुल्क माल के विक्रय के प्रतिफल का भाग है और इसलिए विक्रय-कर के प्रयोजनों के लिए विक्रय-कर अधिनियम की धारा 2(ध) के अधीन उत्पादक के विक्रयावर्त में शामिल किए जाने योग्य है।

आंध्र प्रदेश में शराब का विनिर्माण, थोक और खुदरा विक्रय तथा भंडारण और परिवहन, आंध्र प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1968 (जिसे संक्षेप में इसके आगे "आबकारी अधिनियम" कहा गया है) और आंध्र प्रदेश आसवनी नियम आदि के द्वारा विनियमित होता है; ये सभी नियम आबकारी अधिनियम के अधीन बनाए गए हैं। "आबकारी शुल्क" जो कि आबकारी अधिनियम की

धारा 2(10) में परिभाषित की गई है, शराब के विनिर्माण पर उद्ग्रहणीय है तथा विनिर्माता शराब को किसी भी आसवनी से तब तक नहीं हटा सकता जब तक कि आबकारी अधिनियम के अधीन अधिरोपित (आबकारी) शुल्क का संदाय नहीं कर दिया जाता। अपीलार्थी की आसवनी से देसी शराब के क्रेता आबकारी शुल्क का संदाय करने के पश्चात् शराब छुड़ाने के लिए "आसवनी पास" प्राप्त करते थे और उन पासों को आसवनी में पेश करते थे, जिसके पश्चात् विक्रय का बिल अथवा "इनवाय", जिसमें आबकारी शुल्क को छोड़कर शराब की कीमत दिखाई जाती थी, आसवनी द्वारा तैयार किया जाता है। अपीलार्थियों की लेखा पुस्तकों में भी क्रेता द्वारा संदत्त आबकारी शुल्क के प्रति कोई निर्देश नहीं था। अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश साधारण विक्रय-कर अधिनियम, 1957 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "विक्रय-कर अधिनियम" कहा गया है) के अधीन इसके द्वारा संदेय विक्रय-कर का संदाय अपने विक्रयावर्त (टर्न ओवर) के आधार पर किया, जिसमें आबकारी शुल्क शामिल नहीं थी। विक्रय-कर के लिए कम्पनी का निर्धारण इसकी विवरणियों के आधार पर किया गया था किंतु बाद में वाणिज्य-कर अधिकारी का यह मत था कि कम्पनी ने थोक विक्रेताओं को बेची गई शराब पर संदत्त आबकारी-शुल्क (अपने विक्रयावर्त में) शामिल नहीं किया था। तद्नुसार, कराधान प्राधिकारी ने कम्पनी को यह हेतुक दर्शित करने के लिए कहा कि उसका निर्धारण फिर से क्यों न किया जाए। अपीलार्थी ने उक्त नोटिस को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया, किंतु वहां असफल हो जाने के पश्चात् इस मामले को अपील के माध्यम से उच्चतम न्यायालय में पेश किया। मैकडावल एंड कम्पनी लि० बनाम वाणिज्य कर अधिकारी, सातवां सर्किल, हैदराबाद [(1977) 1 एस० सी० आर० 914] में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने आबकारी अधिनियम तथा इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों की ओर विक्रय-कर अधिनियम के उपबंधों की भी परीक्षा की। उस मामले में इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि आबकारी-शुल्क अपीलार्थियों की सामान्य तिजोरी में नहीं जाता था और इसलिए यह परिचालित पूंजी का भाग नहीं बना था। अतः विक्रय-कर प्राधिकारी अपीलार्थी के विक्रयावर्त में उस आबकारी-शुल्क को शामिल करने के लिए सक्षम नहीं थे जो अपीलार्थी द्वारा प्रभारित नहीं की गई थी, अपितु जो शराब के क्रेताओं द्वारा सीधे आबकारी प्राधिकारी को सीधे ही संदत्त कर दी गई थी। अतः अपीलार्थी इस न्यायालय में सफल हो गए थे और विक्रय-कर प्राधिकारियों द्वारा जारी किए गए नोटिस अभिखंडित कर दिए गए थे।

1985(4) eILR(PAT) SC 57

उस मामले में न्यायालय का निर्णय 25 अक्तूबर, 1976 को सुनाया गया था। आसवनी नियम के नियम 76 और नियम 79 का संशोधन 4 अगस्त, 1981 से किया गया था। संशोधित उपबधों के आधार पर प्रत्यर्थी-अधिकारी ने अपीलार्थी के द्वारा विनिर्मित शराब के क्रेताओं द्वारा सीधे संदत्त उत्पाद शुल्क के रूप में 4,49,09,552.40 रुपए की रकम वर्ष 1982-83 के भाग के लिए अपीलार्थी के विक्रयावर्त में शामिल करने की प्रस्थापना करते हुए अपीलार्थी को एक नोटिस जारी किया। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने फिर से उक्त नोटिस को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया। इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों का अवलम्ब लिया गया। उच्च न्यायालय ने सौहार्दपूर्ण रूप से अपने आपको इस न्यायालय के विनिश्चय से आबद्ध महसूस किया और संशोधित नियमों के प्रभाव पर विचार किया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि उत्पाद-शुल्क संदाय करने का प्रारम्भिक दायित्व निर्विवाद रूप से डी-2 अनुज्ञप्ति के धारक अर्थात् अपीलार्थी का था। यह और निष्कर्ष निकाला गया कि विक्रयावर्त शराब के बारे में था; उत्पाद-शुल्क जो कि अपीलार्थी द्वारा संदेय थी किंतु सौहार्दपूर्ण समझौते के कारण क्रेता द्वारा संदत्त कर दी गई थी, वस्तुत: अपीलार्थी के विक्रयावर्त का ही एक भाग थी और इसलिए विक्रय-कर का दायित्व अवधारित करने के लिए (विक्रयावर्त में) यह शामिल किए जाने योग्य थी। इन निष्कर्षों के आधार पर उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन खारिज कर दिया। जब इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की इजाजत दी गई तो मैकडावल एंड कं० लि० **बनाम** वाणिज्य कर अधिकारी, सातवां सर्किल, हैदराबाद [(1977) 1 एस० सी० आर० 914] में अपीलार्थी के मामले में दिए गए विनिश्चय पर संदेह किया गया और यह मामला एक वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया। इस प्रकार से यह अपील हमारे समक्ष सुनवाई के लिए आई है।

उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी का यह पक्षकथन था कि इसके तैयार माल के क्रेता के लिए उसने यह एक पुरोभाव्य शर्त रखी थी कि क्रेता उत्पाद-शुल्क का संदाय सीधे उत्पाद-शुल्क प्राधिकारियों को करेगा और उत्पाद-शुल्क संबंधी रसीदी चलान पेश करने पर ही उत्पाद-शुल्क प्राधिकारियों के पर्यवेक्षण के अधीन, उसे बिक्री के रूप में आसवनी से शराब जारी की जाती है। ऐसे समझौते को देखते हुए क्रेता द्वारा संदत्त उत्पाद-शुल्क अपीलार्थी के विक्रयावर्त का भाग नहीं बनती। अंतिम दलील के रूप में श्री सोराब जी ने अपीलार्थी की ओर से एक और यह दलील पेश की थी कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने क्रियाकलाप को इस प्रकार से व्यवस्थित करने की छूट है कि वह

कराधान के बोझ को कम से कम कर सके और ऐसी प्रक्रिया के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह कर का अपवंचन (चोरी) है और इसमें कोई निंदा की बात भी है। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—आन्ध्र प्रदेश आबकारी शुल्क अधिनियम, 1968 और इसके अधीन विरचित नियमों के उपबंधों की तथा निर्दिष्ट निर्णयों की परीक्षा करने पर हमारा यह मत है कि इस न्यायालय का यह निष्कर्ष बहुत ही व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है कि देशी शराब के इच्छुक क्रेता भी, जो आसवनी-पास प्राप्त करने की मांग करते हैं, उत्पाद-शुल्क के संदाय के लिए विधितः उत्तरदायी हैं। 'शुल्क' (ड्यूटी) मुख्यतः ऐसा भार था जो विनिर्माता को उठाना होता है और भले ही क्रेताओं ने आसवनी नियमों के अधीन उसका संदाय किया था, तो भी ये उपबंध मात्र समर्थकारी उपबंध थे और इनसे इस भार को उठाने का कोई विधिक उत्तरदायित्व या पद्धति उद्भूत नहीं होती थी। तथापि, हम इस पहलू की और परीक्षा नहीं करना चाहते क्योंकि आसवनी नियमों के नियम 76 में किए गए परिवर्तन ने स्पष्ट रूप से इस स्थिति की पुष्टि कर दी है कि उत्पाद-शुल्क के संदाय का दायित्व विनिर्माता का होता है। नियम 82, 83, 84 के उपबंध इस निष्कर्ष के विरुद्ध नहीं हैं कि उत्पाद-शुल्क का संदाय विनिर्माता का अनन्य दायित्व होता है। इन नियमों में आसवनी-पास प्राप्त करने, सही संगणना करने तथा उत्पाद-शुल्क का सम्पूर्ण संदाय करने, ऐसे शुल्क को जमा कराने की रीति और अंततः आसवनी से पास के अधीन स्पिरिट जारी करने से संबंधित व्यापक उपबंध किए गए हैं। अतः ये नियम इस स्थिति का विरोध नहीं करते कि उत्पाद-शुल्क का संदाय प्राथमिक रूप से और अनन्य रूप से विनिर्माता की बाध्यता है और यदि किसी संविदा अथवा समझौते के अधीन इसका संदाय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की जाती है, तो यह संदाय विनिर्माता की बाध्यता को पूरा करने की कोटि में आयेगा, इससे अधिक कुछ भी नहीं। (पैरा 12)

आंध्र प्रदेश विक्रय-कर अधिनियम, 1957 में विक्रयावर्त की परिभाषा यह स्पष्ट उपदर्शित करती है कि विक्रय के प्रतिफलार्थ प्रभारित कुल रकम को विक्रयावर्त का अवधारण करने के लिए हिसाब में लेना होता है। जहां विक्रय का बिल जारी किया जाता है (और स्पष्टतः इस बिल में प्रतिफलार्थ प्रभारित कुल रकम का उल्लेख किया जाना होता है), वहां इसमें उल्लिखित कुल रकम को हिसाब में लेना होता है। विक्रय के प्रत्येक संव्यवहार में एक ओर तो विक्रेता होता है और दूसरी ओर एक क्रेता होता है तथा माल के हक का नियंत्रण प्रतिफल के लिए होता है। (पैरा 14)

अतः उस दशा में भी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता जबकि एक पूर्ववर्ती करार के अधीन, विनिर्माता-व्यापारी के उत्पाद-शुल्क के संदाय से संबंधित विधिक दायित्व का समाधान क्रेता द्वारा प्राधिकारियों को या राज्य के खजाने में उत्पाद-शुल्क का सीधा संदाय करके कर दिया जाता है। यद्यपि अपीलार्थी के दायित्व को पूरा करने के लिए उत्पाद-शुल्क का संदाय क्रेता द्वारा किया गया है, फिर भी यह उत्पाद-शुल्क विक्रय के प्रतिफल का एक भाग है और अपीलार्थी के विक्रयावर्त में शामिल करने योग्य है। क्रेता ने कर का संदाय इसलिए किया था क्योंकि विधि इसे विनिर्माता की ओर से संदत्त करने के लिए कहती है। (पैरा 15, 16)

कराधान की योजना विधिपूर्ण हो सकती है परन्तु यह तब जबकि यह विधि की रूपरेखा के भीतर हो। छद्मपूर्ण युक्तियां (आभासी युक्तियां) कर योजना का भाग नहीं हो सकतीं और इस विश्वास को समर्थन देना या इसे स्वीकार करना गलत है कि संदिग्ध तरीकों का अवलंब लेकर कर संदाय से बचना एक सम्मानजनक बात है। छद्मपूर्ण युक्तियों का सहारा लिए बिना ईमानदारी से कर संदाय करना प्रत्येक नागरिक की बाध्यता है। (पैरा 26)

कर परिवर्जन की सबसे सूक्ष्म परिभाषा, जो अभी तक मेरे सामने आयी है, वह है: "विधि का उल्लंघन किए बिना कर प्रवंचन की कला।" कर परिवर्जन (अवोइडेन्स) और कर अपवंचन (इवेजन) की संकल्पनाओं में अंतर करने के प्रयास में पर्याप्त विधिक वितण्डता और न्यायिक प्रतिपादना का सहारा लिया गया है और उस अदृश्य रेखा का पता लगाने का प्रयास किया गया है, जो इन दो संकल्पनाओं के बीच विद्यमान है और जो एक संकल्पना को दूसरे से प्रभेदित करती है। कर परिवर्जन, ऐसा प्रतीत होता है, वैध है, किन्तु कर अपवंचन अवैध है। (पैरा 31)

यह दिखाने के लिए इंगलिश मामलों के प्रति कुछ विस्तार से निर्देश किया गया है कि अपनी ही जन्म-भूमि में ही वैस्ट मिनिस्टर के सिद्धांत को सम्मानजनक रूप से दफना दिया गया है और उसी देश में जहां कि "कर परिवर्जन" (टेक्स अवायडेंस) के पद ने जन्म लिया था, कर परिवर्जन के संबंध में न्यायिक दृष्टिकोण बदल गया है और वह मुस्कान जो कि भले ही छद्मपूर्ण रही हो अथवा प्रेमपूर्ण रही हो, अब पूरे तरीके से एक भ्रकुटी में बदल चुकी है। अब न्यायालय संव्यवहार की सद्भाविकता पर ही विचार नहीं करते, अपितु वित्तीय प्रयोजनों के लिए इसके आशयित प्रभाव पर भी विचार करते हैं। अब कोई भी मात्र यह कहकर कर परिवर्जन की स्कीम के

साथ बचकर नहीं जा सकता कि इस स्कीम के बारे में कुछ भी अवैध नहीं है। (पैरा 43)

कर परिवर्जन के कई बुरे परिणाम हैं। पहला तो अत्यधिक आवश्यक लोक राजस्व की पर्याप्त हानि है, विशेषकर हमारे जैसे लोक कल्याणकारी राज्यों में। इसके बाद बहुत अधिक काला धन जोड़ करके, जिससे सीधे ही मुद्रास्फीति बढ़ती है, देश की अर्थव्यवस्था को भारी गंभीर झटका लगता है। तत्पश्चात् कर परिवर्जक और उसके सलाहकारों, वकीलों तथा लेखाकारों के एक विशेषज्ञ दल के बीच और दूसरी ओर कर एकत्रकर्ता और संभवतः उसके कम चतुर सलाहकारों के बीच एक शाश्वत संघर्ष में अंतर्वलित होने के कारण देश के कुछ बहुत ही उत्तम बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा (जैसा कि मास्टर शीट क्राफ्ट ने 18, माडर्न लॉ रेव्यू, 208 में बताया है) समुदाय को "व्यापक गुप्त हानि" होती है। और इसके बाद उन व्यक्तियों के मन में, जो कर परिवर्जन द्वारा या तो लाभ उठाने के इच्छुक नहीं हैं अथवा असमर्थ हैं, अन्याय और असमानता की वह भावना है जो कि कर परिवर्जन उत्पन्न करता है। अन्त में चतुर कर परिवर्जकों द्वारा दिशाहीन और भद्र नागरिकों के कंधों पर कर दायित्व के बोझ को अंतरित करने की नैतिकता (वस्तुतः अनैतिकता) का भी अंतिम प्रश्न है। निस्संदेह सामान्य मनुष्यों के लिए न्या० हाम्स के उस मानसिक स्तर को प्राप्त करना बहुत कठिन है जिन्होंने यह कहा कि "कर असल में वह संदाय है जो हम सभ्य समाज को देते हैं। मैं कर संदाय करना पसंद करता हूं। इन करों के द्वारा मैं सभ्यता खरीदता हूं।" किन्तु निस्संदेह भारतीय न्यायपालिका के लिए भी वैस्ट मिनिस्टर के मामले के तथा कर परिवर्जन के लुभावने तर्क से अलग होने का समय आ गया है। अब हम एक ऐसे कल्याणकारी राज्य में रहते हैं जिसकी वित्तीय आवश्यकताओं का, यदि हो सके तो, विधि के समर्थन के द्वारा सम्मान करना होता है और इन्हें पूरा करना होता है। हमें इस बात को मान लेना चाहिए कि कराधान विधि के पीछे भी इतना ही नैतिक बल अनुशास्ति है, जैसी अन्य कल्याणकारी विधि के पीछे है; और यह कहना मात्र एक बहाना है कि कर परिवर्जन अनैतिक नहीं है और यह कि कर परिवर्जन कर के ईमानदारीपूर्ण संदाय करने की तुलना में कम नैतिक स्तर की बात है। किसी कराधान कानून का निर्वचन करने का सही तरीका कर परिवर्जन की युक्ति पर विचार करते समय, यह पूछना नहीं है कि क्या इन उपबंधों का अर्थान्वयन शब्दशः अथवा उदारतापूर्वक किया जाए और न यह पूछना है कि प्रश्नगत संव्यवहार अवास्तविक तो नहीं है और कानून द्वारा प्रतिषिद्ध तो नहीं है, अपितु यह पूछना है कि क्या

1985(4) eILR(PAT) SC 57

संव्यवहार कर परिवर्जन की एक युक्ति है, और क्या संव्यवहार ऐसा है कि न्यायिक प्रक्रिया इसे अपना अनुमोदन दे सकती है। (पैरा 46)

अवलम्बित निर्णय

		पैरा
[1982]	1982 ए० सी० 300 : डब्ल्यू० टी० रामसे बनाम इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स;	38
[1982]	1982 एस० टी० सी० 30 : इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स बनाम बर्मा आयल कं० लि०;	39
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 178=(1979) 1 एस० सी० आर० 276 : हिन्दुस्तान सूगर मिल्स बनाम राजस्थान राज्य;	15
[1967]	1967 चांसरी 651 : कैम्पबैल बनाम इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स;	36
[1971]	(1971) 3 आल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स : ग्रीनबर्ग बनाम इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स;	36, 37
[1962]	[1962] 2 एस० सी० आर० 570 : मैसर्स जार्ज ऑक्स (प्रा०) लिमिटेड बनाम मद्रास राज्य;	16
[1944]	(1944) 1 आल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स 618 : लव बनाम नारमन राइट (बिल्डर्स) लि०;	16
[1944]	(1944) आल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स : पपरीका लि० और एक अन्य बनाम बोर्ड ऑफ ट्रेड;	372
	40 कम्पनी केसिज 597 : पॉलिमर लिमिटेड बनाम बंगाल होटल्स लि०	46

अननुमोदित निर्णय

[1968]	[1968] 1 एस० सी० आर० 10 : आय-कर आयुक्त, गुजरात बनाम ए० रमन एण्ड कं०;	45
[1936]	1936 ए० सी० 1 : इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स बनाम ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर;	33

[1926]	1926 ए० सी० 395 : इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स बनाम फीसर्स एक्जीक्यूटर्स;	32
	72 आई० टी० आर० 603 : आय-कर आयुक्त, गुजरात बनाम खारवाड़	45

निर्दिष्ट निर्णय

[1972]	(1972) 86 आई० टी० आर० 2 : वाणिज्य-कर आयुक्त बनाम शंकरलाल बालाभाई;	24
[1968]	(1968) 69 आई० टी० आर० 186 : आय-कर आयुक्त बनाम शंकरलाल बालाभाई;	24
[1969]	(1969) 72 आई० टी० आर० 603 : आय-कर आयुक्त, गुजरात II बनाम बी० एम० खारवाड़;	22
[1965]	1965 चांसरी 286 : पब्लिक ट्रस्टी बनाम इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स;	36
[1963]	1963 चांसरी 438 : मॉर्गन बनाम इनलैंड रवैन्यू कमिश्नर्स;	36
[1963]	1963 ए० सी० आई० : गरिफिथ्स बनाम जे० पी० हैरीजन लि०;	36
[1958]	(1958) 34 आई० टी० आर० 888 : जियाजी राव काटन मिल्स लि० बनाम आय-कर और अतिलाभ-कर आयुक्त, बाम्बे;	23
[1968]	(1968) 67 आई० टी० आर० 11 : आय-कर आयुक्त बनाम ए० रमन एण्ड कम्पनी;	22
[1940]	(1940) 8 आई० टी० आर० 522 : बैंक ऑफ चेटिनाड बनाम आय-कर आयुक्त	22

प्रभेदित निर्णय

[1981]	[1981] 3 उम० नि० प० 880=[1981] 1 एस० सी० आर० 707 : आनंद स्वरूप महेश कुमार बनाम विक्रय-कर आयुक्त;	17

[1977] [1977] 4 उम० नि० प० 357=[1977] 1 एस० सी० आर० 914 :

मैकडावल एण्ड कम्पनी लि० और अन्य बनाम वाणिज्य-कर अधिकारी, सातवां सर्किल, हैदराबाद और अन्य; 2, 4

13 एस० टी० सी० 98 :
जार्ज आॅक्स (प्रा०) लि० और अन्य बनाम मद्रास राज्य 20

अनुसरित निर्णय

[1976] [1976] 3 एस० सी० आर० 219 :
ए० बी० अब्दुल कादिर और अन्य बनाम केरल राज्य; 10

[1970] [1970] 2 एस० सी० आर० 68 :
जालंधर रबर गुड्स मैनुफैक्चरर्स, एसोसिएशन बनाम भारत संघ और एक अन्य; 9

[1967] [1967] 1 एस० सी० आर० 548 :
मै० गुरुस्वामी एंड कं० और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य; 8

[1964] [1964] 3 एस० सी० आर० 787 :
सी कस्टम्स ऐक्ट का मामला; 7

[1962] [1962] सप्ली० 3 एस० सी० आर० 436 :
आर० सी० जाल बनाम भारत संघ; 6

[1942] (1942) एफ० सी० आर० 90 :
दि प्रोविंस आफ मद्रास बनाम मैसर्स बोद्दू पैदन्ना एंड संस 6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1983 की सिविल अपील सं० 570.

1982 के रिट पिटीशन सं० 7985 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के 6 दिसम्बर, 1982 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष इजाजत से की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री साली जे० सोराबजी, हरीश एन० साल्वे, रवीन्द्र नारायण और श्रीमती ए० के० वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एस० टी० देसाई, डी० पार्थसारथी और टी० वी० एस० एन० चारी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति रंगनाथ मिश्र ने दिया।

न्यायाधिपति मिश्र—

अपीलार्थी (कम्पनी) ने जो कि हैदराबाद में देसी शराब (इंडियन लीकर) का अनुज्ञप्तिधारी विनिर्माता है, उच्च न्यायालय द्वारा इसके रिट पिटीशन को खारिज किए जाने की कार्यवाही को प्रश्नगत करते हुए विशेष इजाजत से यह अपील की है।

2. शराब का विनिर्माण, थोक और खुदरा विक्रय तथा भंडारण और परिवहन, आंध्र प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1968 (जिसे संक्षेप में इसके आगे "आबकारी अधिनियम" कहा गया है) और आंध्र प्रदेश आसवनी नियम, आंध्र प्रदेश देसी शराब (भाण्डागार भण्डारकरण) नियम और आंध्र प्रदेश विदेशी शराब तथा देसी शराब नियम, के द्वारा विनियमित होता है; ये सभी नियम आबकारी अधिनियम के अधीन बनाए गए हैं। "आबकारी शुल्क" जो कि आबकारी अधिनियम की धारा 2(10) में परिभाषित की गई है, शराब के विनिर्माण पर उद्ग्रहणीय है तथा विनिर्माता शराब को किसी भी आसवनी से तब तक नहीं हटा सकता जब तक कि आबकारी अधिनियम के अधीन अधिरोपित (आबकारी) शुल्क का संदाय नहीं कर दिया जाता। अपीलार्थी की आसवनी से देसी शराब के क्रेता, जैसा अपीलार्थी द्वारा अधिकथन किया गया है, आबकारी शुल्क का संदाय करने के पश्चात् शराब छुड़ाने के लिए "आसवनी पास" प्राप्त करते हैं और उन पासों को आसवनी में पेश करते हैं जिसके पश्चात् विक्रय का बिल अथवा 'इनवायस', जिसमें आबकारी शुल्क को छोड़कर शराब की कीमत दिखाई जाती है, आसवनी द्वारा तैयार किया जाता है। अपीलार्थियों की लेखा पुस्तकों में भी क्रेता द्वारा संदत्त आबकारी शुल्क के प्रति कोई निर्देश नहीं था। अपीलार्थी ने आंध्र प्रदेश साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1957 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "विक्रय-कर अधिनियम" कहा गया है) के अधीन इसके द्वारा संदेय विक्रय-कर का संदाय अपने विक्रयावर्त (टर्न ओवर) के आधार पर किया, जिसमें आबकारी शुल्क शामिल नहीं था। विक्रय-कर के लिए कम्पनी का निर्धारण इसकी विवरणियों के आधार पर किया गया था, किंतु बाद में वाणिज्य-कर अधिकारी का यह मत था कि कम्पनी ने थोक विक्रेताओं को बेची गई शराब पर संदत्त आबकारी-शुल्क शामिल (अपने विक्रयावर्त में) नहीं किया था। तद्नुसार, कराधान प्राधिकारी

ने कम्पनी को यह हेतुक दर्शित करने के लिए कहा कि उसका निर्धारण फिर से क्यों न किया जाए। अपीलार्थी ने उक्त नोटिस को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया, किंतु वहां असफल हो जाने के पश्चात् इस मामले को अपील के माध्यम से इस न्यायालय में पेश किया। **मैकडावल एंड कम्पनी लि० बनाम वाणिज्य-कर अधिकारी, सातवां सर्किल, हैदराबाद**[1] में इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने आबकारी अधिनियम तथा इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों की और विक्रय-कर अधिनियम के उपबंधों की भी परीक्षा की। इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत अपनाया—

> "हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि देसी शराब के वे इच्छुक क्रेता भी जो आसवनी-पास प्राप्त करने की मांग करते हैं, उस आबकारी शुल्क के संदाय के लिए विधित: उत्तरदायी हैं, जो आबकारी विभाग के प्राधिकारियों द्वारा उनसे एकत्रित किया जाता है।"

तत्पश्चात् इस न्यायालय ने इस बात का अवधारण करने के लिए कार्यवाही की कि आसवनी से शराब को हटाने से पूर्व क्रेताओं द्वारा देसी शराब के बारे में आबकारी प्राधिकारियों को सीधे ही संदाय किए गए आबकारी शुल्क या राज्य के खजाने में सीधे जमा कराए गए आबकारी शुल्क के बारे में क्या यह कहा जा सकता है कि यह शुल्क अपीलार्थी-आसवनी के कराधेय विक्रयावर्त का भाग है अथवा नहीं। नजीरों के प्रति निर्देश किया गया था, परंतु न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि आबकारी-शुल्क अपीलार्थियों की सामान्य तिजोरी में नहीं जाता था और इसलिए यह परिचालित पूंजी का भाग नहीं बना था। अत: विक्रय-कर प्राधिकारी अपीलार्थी के विक्रयावर्त में उस आबकारी-शुल्क को शामिल करने के लिए सक्षम नहीं थे जो अपीलार्थी द्वारा प्रभारित नहीं किया गया था, अपितु जो शराब के क्रेताओं द्वारा सीधे आबकारी प्राधिकारियों को संदत्त कर दिया गया था। अत: अपीलार्थी इस न्यायालय में सफल हो गए थे और विक्रय-कर प्राधिकारियों द्वारा जारी किए गए नोटिस अभिखंडित कर दिए गए थे।

3. इस न्यायालय का निर्णय 25 अक्तूबर, 1976 को सुनाया गया था। आसवनी नियम के नियम 76 और नियम 79 का संशोधन 4 अगस्त, 1984 से किया गया था। नियम 76(क) में यह उपबंध किया गया है: "विनिर्मित या भण्डारकृत कोई भी स्पिरिट या शराब तब तक नहीं हटायी जाएगी जब

---

[1] [1977] 4 उम० नि० प० 357=[1977] 1 एस० सी० आर० 914.

तक, आबकारी शुल्क का शराब के हटाए जाने से पूर्व, डी-2 अनुज्ञप्ति धारक द्वारा नियम 6 में विनिर्दिष्ट आबकारी-शुल्क का संदाय नहीं कर दिया जाता।" इस बात के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी विधि के अधीन डी-2 अनुज्ञप्ति का धारक है। धारा 79(1) यह उपबंध करता है कि—

*"79(1) आबकारी शुल्क का संदाय किया जाने पर मानवीय प्रयोग के लिए उपयुक्त स्पिरिट को हटाए जाने के लिए डी-2 के अनुज्ञप्तिधारी के द्वारा आसवनी पास केवल निम्नलिखित व्यक्तियों में से किसी एक के लिए मंजूर किया जा सकता है; अर्थात्—

(क) आंध्र प्रदेश अथवा किसी अन्य राज्य में थोक या खुदरा स्पिरिट की बिक्री के लिए अनुज्ञप्ति के धारण करने वाले व्यक्ति के लिए, और जब स्पिरिट का उस जिले की सीमाओं से परे परिवहन या निर्यात किया जाना होता है, जिस जिले में आसवनी स्थित है तो गन्तव्य जिले के आबकारी अधीक्षक द्वारा अथवा इस बारे में प्राधिकृत उस जिले के अधिकारी हस्ताक्षरित अनुज्ञा-पत्र धारण करने वाले व्यक्ति के लिए;

(ख) आंध्र प्रदेश राज्य से किसी दूसरे राज्य में ऐसी स्पिरिट के निर्यात के लिए उपर्युक्त खंड (क) में निर्दिष्ट

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"79(1). On payment of the excise duty by the holder of D-2 licence a distillery pass for the removal of spirit fit for human consumption may be granted in favour of any of the following persons only, namely—

(a) A person holding a licence in the Andhra Pradesh or in other States for sale of spirit by wholesale or retail and when the spirit is to be transported or exported beyond the limits of the district in which the distillery is situated, to a person holding a permit signed by the Excise Superintendent of the District of destination or an officer of that District authorised in this behalf.

(b) A person holding a permit signed by the officer of any other State referred to in clause (a)

किसी भी अन्य राज्य के व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित अनुज्ञा-पत्र धारण करने वाले व्यक्ति के लिए;

(ग) संघ राज्य क्षेत्र को ऐसी स्पिरिट के निर्यात के लिए इस बारे में सम्यकतः प्राधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित अनुज्ञा-पत्र धारण करने वाले व्यक्ति के लिए;

(घ) ऐसे किसी जिले या राज्य को परिशोधित स्पिरिट या शराब का परिवहन या निर्यात करने के लिए आंध्र प्रदेश के किसी भी जिले के आबकारी अधीक्षक का या उपर्युक्त खंड (क) में निर्दिष्ट राज्य के किसी अन्य अधिकारी का अनुज्ञा-पत्र धारण करने वाले व्यक्ति के लिए"।

4. संशोधित उपबंधों के आधार पर प्रत्यर्थी-अधिकारी ने अपीलार्थी के द्वारा विनिर्मित शराब के क्रेताओं द्वारा सीधे संदत्त उत्पाद-शुल्क के रूप में 4,49,09,552.40 रु० की रकम वर्ष 1982-83 के भाग के लिए अपीलार्थी के विक्रयावर्त में शामिल करने की प्रस्थापना करते हुए अपीलार्थी को एक नोटिस जारी किया। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने फिर से उक्त नोटिस को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया। इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों का अवलंब लिया गया। उच्च न्यायालय ने सौहार्दपूर्ण रूप से अपने आपको इस न्यायालय के विनिश्चय से आबद्ध महसूस किया और संशोधित नियमों के प्रभाव पर विचार किया तथा यह अभिनिर्धारित किया कि उत्पाद-शुल्क संदाय करने का प्रारंभिक दायित्व निर्विवाद रूप से डी-2 अनुज्ञप्ति के धारक का था। यह और निष्कर्ष निकाला गया कि विक्रयावर्त शराब के बारे में था; उत्पाद-शुल्क जो कि अपीलार्थी द्वारा संदेय था, किंतु सौहार्दपूर्ण समझौते के कारण यह क्रेता द्वारा संदत्त किया गया था,

---

above for the export of such spirit from the Andhra Pradesh in to that State.

(c) A person holding a permit signed by an officer duly authorised in that behalf for export of such spirit to an Union Territory.

(d) A person holding a permit from the excise superintendent of any district in the Andhra Pradesh or from an officer referred to in clause (a) above of any other State to transport or export rectified spirits or wine to such district or State."

1985(4) eILR(PAT) SC 57

वस्तुतः अपीलार्थी के विक्रयावर्त का एक भाग था, और इसलिए विक्रय-कर का दायित्व अवधारित करने के लिए (विक्रयावर्त में) यह शामिल किए जाने योग्य था। इन निष्कर्षों के आधार पर उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन खारिज कर दिया। जब इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की इजाजत दी गई तो **मैकडावल एंड कं० लि० बनाम वाणिज्य-कर अधिकारी (सातवां सर्किल) हैदराबाद**[1] में अपीलार्थी के मामले में दिए गए विनिश्चय पर संदेह किया गया और यह मामला एक वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया। इस प्रकार से यह अपील हमारे समक्ष सुनवाई के लिए आई है।

5. अपील के समर्थन में हाजिर होने वाले श्री सोराब जी ने अपनी दलीलों के प्रारम्भ में ही यह कहा कि इस अपील में कोई सांविधानिक प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है। उन्होंने यह भी उचित ही कहा कि उत्पाद-शुल्क अधिनियम तथा नियमों की शक्ति को भी चुनौती नहीं दी गई है। 1981 के नियम का संशोधन भी विवादास्पद नहीं था।

6. **दि प्रॉविंस आफ मद्रास** बनाम **मैसर्स बोद्दू पैदन्ना एंड संस**[2] के मामले में फैडरल न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि—

> "सिद्धांत की दृष्टि से किसी वस्तु पर तत्काल उस समय उत्पाद-शुल्क अधिरोपित करने से केंद्रीय विधानमंडल को निवारित करने की कोई बात नहीं है, जबकि वह वस्तु ज्यों ही अस्तित्व में रहती है—भले ही बाद में इस वस्तु के साथ कुछ भी होता है, चाहे यह बेच दी जाती है, इसका उपभोग कर लिया जाता है, नष्ट हो जाती है, या दे दी जाती है। कराधान प्राधिकारी आम तौर पर ऐसा शुल्क अधिरोपित नहीं करेगा क्योंकि शुल्क को उस समय एकत्रित करना प्रशासन की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक है जबकि वह वस्तु सर्वप्रथम कारखाने से बाहर निकलती है, और इसलिए भी क्योंकि इस शुल्क का आशय एक प्रकार का ऐसा अप्रत्यक्ष शुल्क होना है जो विनिर्माता या उत्पादक अंतिम उपभोगता को अंतरित कर देता है, और ऐसा वह उस दशा में नहीं कर सकता यदि, उदाहरणस्वरूप, वस्तु स्वयं कारखाने में ही नष्ट हो गई होती। विनिर्माण का तथ्य ही ऐसा है जो कि शुल्क अधिरोपित/आकृष्ट करता है, भले ही यह शुल्क बाद में एकत्रित किया जाए……"

---

[1] [1977] 4 उम० नि० प० 357=[1977] 1 एस० सी० आर० 914.

[2] (1942) एफ० सी० आर० 90.

इस न्यायालय ने इस मत का अनुसरण किया है और अनेक विनिश्चयों द्वारा इस स्थिति को संदेह से परे बना दिया गया है। **आर० सी० जल बनाम भारत संघ**[1] के मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है—

> "उत्पाद-शुल्क मुख्यत: देश के भीतर उत्पन्न किए गए या विनिर्मित माल के उत्पादन या विनिर्माण पर अधिरोपित एक शुल्क है। कराधान प्राधिकारी की विधायी सक्षमता के सदैव ही अधीन रहते हुए, उक्त कर ऐसे सुविधाजनक प्रक्रम पर तब तक अधिग्रहण किया जा सकता है जब तक कि इस लाग (इम्पोस्ट) की प्रकृति समाप्त नहीं होती। एकत्र करने की रीति शुल्क के तत्त्व को प्रभावित नहीं करती, अपितु केवल प्रशासनिक सुविधा के लिए उद्ग्रहण की मशीनरी से संबंधित होती है।"

7. **सी कस्टम्स ऐक्ट**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कहा कि—

> "बहुत सम्मान सहित हम उक्त 3 विनिश्चयों (1949 एफ० सी० आर० 18; 1942 एफ० सी० आर० 90 और 1945 एफ० सी० आर० 179) द्वारा अधिकथित सिद्धांत कि उत्पाद-शुल्क के उद्ग्रहण के विषय में और इस शुल्क के एकत्रित करने के लिए मशीनरी के संबंध में उक्त तीन विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धान्त स्वीकार करते हैं।"

8. **मैसर्स गुरूस्वामी एण्ड कं० बनाम मैसूर राज्य और अन्य**[3] के मामले में न्या० सीकरी (जैसे कि वे तब थे) ने बहुमत की ओर से निर्णय सुनाया और विनिश्चयाधार का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया—

> "यह मामला यह सिद्ध करता है कि उत्पाद-शुल्क होने के लिए (क) उद्ग्रहण 'माल' पर होना चाहिए, और (ख) कराधान की विषयवस्तु माल का विनिर्माण या उत्पादन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त उद्ग्रहण, उत्पादन या विनिर्माण के प्रक्रम पर अधिरोपित किया जाना आवश्यक नहीं है अपितु बाद में भी अधिरोपित किया जा सकता है।"

---

1 [1962] सप्ली० 3 एस० सी० आर० 436.

2 [1964] 3 एस० सी० आर० 787.

3 [1967] 1 एस० सी० आर० 548.

9. **जालंधर रबर गुड्स मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] के मामले में न्या० ग्रोवर ने जल वाले मामले में दिए गए निर्णय का एक भाग प्रोद्धृत करने के पश्चात् न्यायालय से यह कहा कि—

> "विधि का उपर्युक्त कथन किसी भी प्रकार से इस दलील का समर्थन नहीं करता कि उत्पाद-शुल्क उन व्यक्तियों से एकत्र नहीं किया जा सकता जो न तो उत्पादक हैं और न खुद निर्माता। उत्पाद-शुल्क का आपतन निस्संदेह माल के उत्पादन या विनिर्माण पर सीधा होता है किन्तु एकत्रित करने की रीति शुल्क के तत्त्व को प्रभावित नहीं करेगी।"

10. **ए० बी० अब्दुल कादिर और अन्य** बनाम **केरल राज्य**[2] में इस न्यायालय ने स्थिति के बारे में इस प्रकार पुन: कथन किया—

> "यह भलीभांति सुस्थिर है कि उत्पाद-शुल्क, कराधान वाले देश में उत्पन्न की गयी या विनिर्मित वस्तु पर एक कर है। मोटे तौर पर कर, विनिर्माता या उत्पादक पर होता है, फिर भी ऐसी विधियां पायी जाती हैं जो विनिर्माण या उत्पादन से पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर भी उत्पाद-शुल्क अधिरोपित करती हैं।"

अत: उत्पाद-शुल्क के आपतन (प्रभाव) का सीधा संबंध विनिर्माण से है किंतु इसे एकत्रीकरण की सुविधा या अभ्यावश्यकता के रूप में पश्चात्वर्ती प्रक्रम तक आस्थगित किया जा सकता है।

11. उत्पाद-शुल्क अधिनियम के, इसके अधीन विरचित नियम के उपबंधों तथा ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों की परीक्षा करने पर हमारा यह मत है कि रिपोर्ट के पृष्ठ 921 पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष बहुत ही व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है कि देशी शराब के इच्छुक क्रेता भी, जो आसवनी-पास प्राप्त करने की मांग करते हैं, उत्पाद-शुल्क के संदाय के लिए विधित: उत्तरदायी हैं। 'शुल्क' (ड्यूटी) मुख्यत: ऐसा भार था जो विनिर्माता को उठाना होता था और भले ही यदि क्रेताओं ने आसवनी नियमों के अधीन उसका संदाय किया था, तो भी ये उपबंध मात्र समर्थकारी उपबंध थे और इनसे इस भार को उठाने का कोई विधिक उत्तरदायित्व या पद्धति उद्भूत नहीं होती थी। तथापि, हम इस पहलू की और परीक्षा नहीं करना चाहते क्योंकि आसवनी नियमों के नियम 76 में किए गए परिवर्तन ने स्पष्ट

---

[1] [1970] 2 एस० सी० आर० 68.
[2] [1976] 3 एस० सी० आर० 219.

रूप से इस स्थिति की पुष्टि कर दी है कि उत्पाद-शुल्क के संदाय का दायित्व विनिर्माता का होता है। नियम 82, 83, 84 के उपबंध इस निष्कर्ष के विरुद्ध नहीं हैं कि उत्पाद-शुल्क का संदाय विनिर्माता का अनन्य दायित्व होता है। इन नियमों में आसवनी-पास प्राप्त करने, सही संगणना करने तथा उत्पाद-शुल्क का सम्पूर्ण संदाय करने, ऐसे शुल्क को जमा कराने की रीति और अंततः आसवनी से पास के अधीन स्पिरिट जारी करने से संबंधित व्यापक उपबंध किए गए हैं। अतः ये नियम इस स्थिति का विरोध नहीं करते कि उत्पाद-शुल्क का संदाय प्राथमिक रूप से और अनन्य रूप से विनिर्माता की बाध्यता है और यदि किसी संविदा अथवा समझौते के अधीन इसका संदाय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तो यह संदाय विनिर्माता की बाध्यता को पूरा करने की कोटि में आयेगा—इससे अधिक कुछ भी नहीं।

12. उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी का यह पक्षकथन था कि इसके तैयार माल के क्रेता के लिए उसने यह एक पुरोभाव्य शर्त रखी थी कि क्रेता उत्पाद-शुल्क का संदाय सीधे उत्पाद-शुल्क प्राधिकारियों को करेगा और उत्पाद-शुल्क संबंधी रसीदी चालान पेश करने पर ही उत्पाद-शुल्क प्राधिकारियों के पर्यवेक्षण के अधीन, उसे बिक्री के रूप में आसवनी से शराब जारी की जाती है। ऐसे समझौते को देखते हुए क्रेता द्वारा संदत्त उत्पाद-शुल्क अपीलार्थी के विक्रयावर्त का भाग नहीं बनती।

13. "विक्रयावर्त" (टर्न ओवर) विक्रय-कर अधिनियम की धारा 2(ध) में परिभाषित किया गया है, जिससे "विक्रय के बिल में (अथवा यदि विक्रय का कोई बिल नहीं है, तो प्रभारित की गयी कुल रकम) माल के बेचने या खरीदने के प्रतिफलार्थ उल्लिखित कुल रकम अभिप्रेत है (चाहे ऐसा प्रतिफल नगद हो, आस्थगित संदाय हो या कोई अन्य वस्तु या मूल्य हो) जिसके अंतर्गत माल के परिदान के समय या उससे पूर्व बेचे गए माल के बारे में की गयी किसी बात के लिए व्यापारी द्वारा प्रभारित कोई रकम भी आती है तथा व्यापारी द्वारा प्रभारित कोई अन्य राशि भी आती है चाहे उसका विवरण, नाम या उद्देश्य कुछ भी हो।"

14. यह परिभाषा यह स्पष्ट उपदर्शित करती है कि विक्रय के प्रतिफलार्थ प्रभारित कुल रकम को विक्रयावर्त का अवधारण करने के लिए हिसाब में लेना होता है। जहां विक्रय का बिल जारी किया जाता है (और स्पष्टतः इस बिल में प्रतिफलार्थ प्रभारित कुल रकम का उल्लेख किया जाना होता है), वहां इसमें उल्लिखित कुल रकम को हिसाब में लेना होता है। विक्रय के प्रत्येक संव्यवहार में एक ओर तो विक्रेता होता है और दूसरी

ओर एक क्रेता होता है तथा माल के हक का नियंत्रण प्रतिफल के लिए होता है।

15. **हिन्दुस्तान शूगर मिल्स बनाम राजस्थान राज्य**[1] में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि—

> "कसौटी यह है कि किसी माल के विक्रय के लिए क्रेता की ओर से विक्रेता (व्यापारी) को कितना प्रतिफल अंतरित किया जाता है। इस बात की जांच करना सारवान् नहीं है कि प्रतिफल की रकम किन-किन तत्त्वों से मिलकर बनी है या क्या इसके अंतर्गत उत्पाद-शुल्क या विक्रय-कर अथवा माल भाड़े शामिल हैं या नहीं। एकमात्र सुसंगत प्रश्न यह पूछना होता है कि क्रेता द्वारा विक्रेता को विक्रय के प्रतिफलस्वरूप क्या रकम संदेय है......।"

न्यायालय ने यह और कहा कि—

> "उदाहरण के तौर पर, ऐसे व्यापारी द्वारा संदेय उत्पाद-शुल्क को लें जो कि एक विनिर्माता है। जब वह अपने द्वारा विनिर्मित माल बेचता है, तो वह उत्पाद-शुल्क सदैव ही क्रेता को अंतरित करता है। सामान्यत: यह शुल्क बिल में एक पृथक् मद के रूप में दिखाई जाती है किंतु यह शुल्क उसके द्वारा प्रभारित कीमत में शामिल होती है। ऐसे मामले में विक्रय मूल्य वह सम्पूर्ण कीमत हो सकता है, जिसमें उत्पाद-शुल्क भी शामिल है क्योंकि यह वह प्रतिफल होगा जो क्रेता के द्वारा माल क्रय करने के लिए संदेय होगा। यह सही है कि कीमत में उत्पाद-शुल्क का जोड़ा गया अंश व्यापारी (विक्रेता) की तिजोरी में कोई वृद्धि नहीं करेगा क्योंकि यह रकम माल के विनिर्माण के कारण उसके द्वारा पहले ही संदत्त उत्पाद-शुल्क की प्रतिपूर्ति करने के लिए होगी। किंतु फिर भी यह विक्रय मूल्य का एक भाग होगी क्योंकि यह माल के विक्रय के लिए प्रतिफल का एक अंश होती है और यह कि उत्पाद-शुल्क को उपदर्शित करने वाली रकम क्रेता द्वारा संदेय होगी। दायित्व की कोई ऐसी रीति नहीं है—कानूनी अथवा अन्यथा, जिसके अधीन क्रेता उत्पाद-शुल्क की रकम व्यापारी (विक्रेता) को देने के लिए दायी होगा और इसी तर्क के आधार पर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ेगा, चाहे उत्पाद-शुल्क की रकम व्यापारी

---

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 178=[1979] 1 एस० सी० आर० 276.

द्वारा प्रभारित कीमत में शामिल है अथवा बिल में एक अलग मद के रूप में दिखाई जाती है।"

हम यह और कहना चाहेंगे कि उस दशा में भी स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता जबकि एक पूर्ववर्ती करार के अधीन, विनिर्माता-व्यापारी को उत्पाद-शुल्क के संदाय से संबंधित विधिक दायित्व का समाधान, क्रेता द्वारा प्राधिकारियों को या राज्य के खजाने में उत्पाद-शुल्क का सीधा संदाय करके कर दिया जाता है।

16. **पपरिका लिमिटेड और एक अन्य बनाम बोर्ड आफ ट्रेड, लारेंस**[1] **में यह** कहा गया है कि—

"जब कभी किसी बिक्री पर क्रय-कर अधिरोपित किया जाता है तो संभवत: यह कर उसी कीमत को प्रभावित करता है जिसकी ऐसा विक्रेता, जो वह कर संदाय करने का दायी है, मांग करता है किंतु ऐसी दशा में भी यह ऐसी ही कीमत बनी रहती है जिसका संदाय क्रेता को करना होता है—भले ही कीमत का उल्लेख इस प्रकार किया जाता है : 'क'+क्रय-कर।"

मैसर्स जार्ज ओक्स पी० लिमिटेड बनाम **मद्रास राज्य**[2] में इस न्यायालय ने इस उद्धरण को अनुमोदन सहित उद्धृत किया है तथा **लव** बनाम **नार्मन राइट (बिल्डर्स) लिमिटेड**[3] में एल० जे० गोडार्ड के निर्णय में निम्नलिखित पद्यांश के प्रति निर्देश किया—

"जहां किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है, चाहे क्रय-कर के द्वारा, सीमा-शुल्क के द्वारा अथवा उत्पाद-शुल्क के द्वारा, वहां वह कर उस कीमत का भाग बन जाता है जो सामान्यत: क्रेता को संदाय करनी पड़ती है। एक औंस तम्बाकू की जो कीमत है वह कर की दर के कारण से है। किन्तु विक्रय करने पर एक ही प्रतिफल है, भले ही यह लागत+लाभ+कर से मिलकर बना हो। इसलिए यदि विक्रेता किसी माल को विक्रय के लिए प्रस्तुत करता है, तो उसको ऐसी कीमत बतानी चाहिए जिसके अन्तर्गत कर भी शामिल है—यदि वह इस कर को क्रेता पर अंतरित करना चाहता है। यदि क्रेता इस कीमत से सहमत हो जाता है तो उसके लिए इस बात पर

[1] (1944) आ० इं० रिपोर्ट्स 372.

[2] [1962] 2 एस० सी० आर० 570.

[3] (1944) 1 ए० एल० रिपोर्ट्स 618.

विचार करना आवश्यक नहीं कि यह कीमत किस-किस तत्त्व से मिलकर बनी है या क्या विक्रेता ने इसमें कर शामिल किया है अथवा नहीं। जहां तक क्रेता का संबंध है वह माल के लिए वह रकम संदाय करता है जो विक्रेता मांगता है अर्थात् कीमत, भले ही इसके अंतर्गत कर भी शामिल हो। विक्रय के लिए यही सम्पूर्ण एकमात्र विचारणा है और इस बात के लिए कोई कारण नहीं कि क्रेता द्वारा विक्रेता को संदत्त सम्पूर्ण रकम विक्रय के लिए प्रतिफल तथा विक्रयावर्त में शामिल क्यों न मानी जाए।"

स्वीकृत रूप से अपीलार्थी द्वारा जारी किए गए बिलों में उत्पाद-शुल्क शामिल नहीं था। जैसा कि पहले निष्कर्ष निकाला जा चुका है, उत्पाद-शुल्क का संदाय उत्पादक का विधिक दायित्व है; इसका संदाय आसवनी से शराब के हटाए जाने के लिए एक पुरोभाव्य शर्त है तथा क्रेता द्वारा संदाय विक्रेता की ओर से किया गया है। तद्नुसार सामान्य व वाणिज्यिक प्रक्रिया के अनुसार उत्पाद-शुल्क विक्रय के बिल में या तो कीमत में शामिल करके दर्शाई जानी चाहिए अथवा अलग से दिखाई जानी चाहिए। तथ्य के रूप में, क्रेता के हाथ में शराब की लागत वह है जो कि अपीलार्थी द्वारा इसके बिल के अधीन तथा उस उत्पाद-शुल्क के साथ प्रभारित की जाती है जो क्रेता ने विक्रेता की ओर से सीधे संदत्त कर दी है। इस प्रकार से विक्रय के लिए प्रतिफल कुल रकम है और वह रकम नहीं जो कि बिल में दिखाई गई है। अत: हमारी स्पष्ट राय यह है कि यद्यपि अपीलार्थी के दायित्व को पूरा करने के लिए उत्पाद-शुल्क का संदाय क्रेता द्वारा किया गया है फिर भी यह उत्पाद-शुल्क विक्रय के प्रतिफल का एक भाग है और अपीलार्थी के विक्रयावर्त में शामिल करने योग्य है। क्रेता ने कर का संदाय इसलिए किया है क्योंकि विधि इसे विनिर्माता की ओर से संदत्त करने के लिए कहती है।

17. अपनी बहस के दौरान में सोराब जी ने **आनंद स्वरूप महेशकुमार बनाम विक्रय-कर आयुक्त**[1] के मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया। यह न्यायालय ऐसे व्यापारी के बारे में तद्नुरूपी उत्तर प्रदेश अधिनियम के अधीन विक्रय-कर के दायित्व पर विचार कर रहा था जो कि जिला मेरठ के मंडी आनंदगंज, बड़ौत में कारबार कर रहा था। विक्रय-कर अधिकारियों ने व्यापारी के क्रयावर्त में "मार्केट फीस" शामिल कर दी थी और वह कमीशन भी शामिल कर दिया था जो विक्रय-कर संगणित करने के प्रयोजन के लिए बाजार क्षेत्र में काम करने वाले कमीशन एजेंट को

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 880=[1981] 1 एस० सी० आर० 707.

संदेय था। उत्तर प्रदेश अधिनियम में "क्रय आवर्त" शब्द की परिभाषा पर निर्णय आधारित था तथा अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों पर आधारित था। किसी एजेंट को संदेय "मार्केट फीस" कमीशन जो कि एजेंट को संदेय है, उत्पाद-शुल्क से बहुत भिन्न है और विधि की दृष्टि से इसके बारे में एक बहुत ही भिन्न स्थिति उत्पन्न होती है। अपीलार्थी के इस मामले के लिए उक्त विनिश्चय से सहायता उपलब्ध नहीं होती। हम यह और उल्लेख करना चाहेंगे कि सुसंगत बात यह नहीं है कि क्या विधि क्रेता को उत्पाद-शुल्क के आपतन को अंतरित करने की अनुज्ञा देता है, किंतु बात यह है कि इसको अंतरित करने के विरुद्ध कोई प्रतिषेध है ? यदि कोई वर्जन नहीं है तो उत्पाद-शुल्क का यह आपतन सामान्य वाणिज्यिक प्रक्रिया के अनुसार क्रेता को अंतरित कर दिया जाएगा।

18. श्री सोराब जी ने विक्रय-कर अधिनियम की प्रथम अनुसूची में किए गए संशोधन के प्रति निर्देश करते हुए अपीलार्थी के पक्षकथन के समर्थन में एक दलील पेश की। अनुसूची का सुसंगत भाग इस प्रकार है—

मद सं०	माल का विवरण	उद्ग्रहण का बिंदु	कर की दर
26	देसी ठर्रे से भिन्न सभी अन्य प्रकार की शराब [किंतु वोदका को शामिल करते हुए (1026)]	राज्य में विक्रय के प्रथम बिंदु पर	3 (50 पैसे) एक रुपए में
	(क) अधोलिखित मद सं० (ख) के अंतर्गत जो नहीं आती;	—	—
	(ख) जहां कि शराब के क्रय या विक्रय के लिए प्रतिफल में आंध्र प्रदेश अधिनियम, 1968 के अधीन संदेय उत्पाद-शुल्क शामिल होता है।	—	3 (25 पैसे) एक रुपए में

19. प्रत्यक्षतः यह संशोधन सन् 1976 में अपीलार्थी की अपील में इस न्यायालय के निर्णय के पश्चात् किया गया था और यह स्थिति अब 1984 के संशोधन के द्वारा और परिवर्तित कर दी गई है। शराब की बिक्री, अब राज्य में विक्रय के अंतिम बिंदु से भिन्न प्रत्येक बिंदु पर कराधेय बना दी गई है।

इस न्यायालय के समक्ष दी गई दलील यह है कि अपीलार्थी ने एक रुपये में 50 पैसे की दर से इस आधार पर कर का पहले ही संदाय कर दिया गया था कि शराब के विक्रय के लिए प्रतिफल में उत्पाद का वह शुल्क शामिल नहीं था जो आबकारी-शुल्क के अधीन संदेय था और इसलिए अपीलार्थी को एक दूसरे आधार पर विक्रय-कर देने के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता। इस दलील में कोई बल नहीं है। ऐसा पक्षकथन उच्च न्यायालय में किए गए रिट पिटीशन के समय नहीं किया गया था और इस स्थिति की वास्तविक परीक्षा नहीं की गयी है कि क्या ऊपर उपदर्शित वर्गीकरण का आशय बिल्कुल ही विभिन्न स्थितियों को शामिल करना है अथवा नहीं। इस बारे में विवाद का निपटारा करने के लिए कि क्या आबकारी-शुल्क विक्रयावर्त का भाग है अथवा नहीं, अनुसूची के प्रति किए गए निर्देश बिल्कुल ही असंगत हैं।

20. श्री सोराब जी ने **जार्ज आँक्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य** बनाम **मद्रास राज्य**[1] के मामले में न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्या० हिदायतुल्ला (जिस पद पर वे तब थे) के मतों का भारी अवलंब लिया जहां कि यह कहा गया था—

> "इस न्यायालय द्वारा (12 एस० टी० सी० 274) में यह कहा गया था कि जहां तक क्रेता का संबंध है, "कीमत" शब्द में कर भी आता है, और यह कि विक्रय-कर से संबंधित विधियों में विक्रयावर्त के अंतर्गत, इंग्लैंड और अमरीका में भी, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कर भी शामिल होता है। कर शामिल किए जाने के लिए कारण यह बताया गया है कि ऐसा व्यापारी जो कर वसूल करता है, वह उसे सरकार को तुरंत पेश नहीं करता अपितु उसे अपने पास रखता है, और सरकार को देने से पूर्व अपने कारबार के काम में ले लेता है। अतः कुछ समय के लिए यह व्यापारी की परिचालित पूंजी का भाग बन जाता है और इस प्रकार से उसे कारबार में शामिल कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया था कि क्रेता द्वारा संदेय कीमत कर को मिलाकर वस्तु का इतना/ऐसा धन नहीं था अपितु यह दोनों की एक समेकित रकम थी। अतः कुल विक्रयावर्त की गणना करने में (विक्रय) कर का विक्रयावर्त का भाग मानने में कोई गलती नहीं है क्योंकि विक्रयावर्त से वह धनराशि अभिप्रेत है जो कारबार से निकलती है।"

---

[1] 13 एस० टी० सी० 98.

21. श्री सोराब जी के अनुसार आबकारी-शुल्क कभी भी अपीलार्थी के हाथ में नहीं आया था और कम्पनी को इसे अपने हाथ में लेने का कोई भी अवसर या सुअवसर नहीं प्राप्त हुआ था और इसलिए इसे कभी भी कंपनी के विक्रयावर्त का भाग नहीं माना जा सकता। इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत बिल्कुल ही भिन्न परिस्थितियों में (व्यक्त किए गए) थे और जिस बात पर विचार किया जा रहा था वह यह थी कि क्या मद्रास अधिनियम के अधीन उद्ग्रहण किया गया अतिरिक्त-कर विक्रयावर्त का भाग था अथवा नहीं। यदि हम न्या० हिदायतुल्ला द्वारा व्यक्त किए गए मत को इस प्रकार स्वीकार करें कि यह मत सामान्य रूप से लागू किए जाने के लिए एक कसौटी है तो ऐसा करना राजस्व के लिए बहुत ही अलाभकर होगा क्योंकि क्रेता और विक्रेता के बीच में, विशेष करार के अनुसार, जो कुछ प्रतिफल विशेष होगा, उसका एक भाग बाहर रखा जा सकता है और विक्रयावर्त को कम किया जा सकता है तथा कर के दायित्व से बेचा जा सकता है। हमारी यह राय है कि अपीलार्थी के मामले अर्थात् (1977) 1 एस० सी० आर० 914 में इस विषय के दूसरे पहलू के संबंध में, निकाला गया यह निष्कर्ष अर्थात् जब आबकारी-शुल्क निर्धारिती की सामान्य तिजौरी में नहीं जाती है और यह उसकी परिचालित पूंजी का भाग नहीं बनती है, तो यह मिलकर विक्रयावर्त नहीं होता—इस बात का अवधारण करने के लिए एक निश्चायक कसौटी नहीं है कि क्या ऐसा शुल्क विक्रयावर्त का भाग होगी अथवा नहीं।

22. अंतिम दलील के रूप में श्री सोराब जी ने एक यह और दलील पेश की थी कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने क्रियाकलाप को इस प्रकार से व्यवस्थित करने की छूट है कि वह कराधान के बोझ को कम से कम कर सके और ऐसी प्रक्रिया के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह कर का अपवंचन (चोरी) है और इसमें कोई निंदा की बात भी नहीं है। अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने **आय-कर आयुक्त** बनाम **रमण एंड कं०**[1] के मामले में इस न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्या० शाह के मत का अवलंब लिया, जहां यह कहा गया था कि—

> "विधि किसी व्यापारी को इतना अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अनुगृहीत नहीं करती जितना वह अपने व्यापारिक संव्यवहारों से प्राप्त कर सकता है। जो आय किसी व्यापारी

---

1 [1968] 67 आई० टी० आर 11.

को प्रोद्भूत होती है, वह कराधेय होती है; और उस आय को जो वह प्राप्त कर सकता था किंतु उसने अर्जित नहीं की है, प्रोद्भूत होने वाली आय के रूप में कराधेय नहीं बनाया जाता···। वाणिज्यिक क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित करना जिससे कर का भार वितरित कर दिया जाए, प्रतिषिद्ध नहीं है। करदाता, इससे पूर्व कि कोई आय उसे प्रोद्भूत हो या उसे प्राप्त हो, उसे इधर-उधर करने की युक्ति का अवलंब ले सकता है। इस युक्ति की प्रभावशीलता नैतिकता की विचारणाओं पर नहीं अपितु आय-कर अधिनियम के प्रवर्तन पर निर्भर करती है। कराधान संबंधी कानूनों में विधायी व्यादेश का, शास्ति के जोखिम के सिवाय, अतिक्रमण नहीं किया जा सकता, किंतु इसे विधिपूर्ण रूप से इधर-उधर किया जा सकता है।"

आय-कर आयुक्त, गुजरात II बनाम बी० एम० खारवाड़[1] के मामले में उन्हीं विद्वान् न्यायाधीश (जिस पद पर वे तब थे) के मत से सहायता लेने का भी प्रयत्न किया गया था। **बैंक आफ ट्रिनाड लि० बनाम आय-कर आयुक्त**[2] के मामले में प्रिवी कौंसिल के निर्णय से पद्यांश उद्धृत करने के पश्चात् न्यायालय ने यह कहा कि—

"कराधान प्राधिकारी किसी संव्यवहार के परिणामस्वरूप सही विधिक संबंध का अवधारण करने के लिए हकदार हैं और निस्संदेह आबद्ध भी है। यदि पक्षकारों ने एक युक्ति के द्वारा विधिक संबंधों को छिपाने का प्रयत्न किया है तो कराधान प्राधिकारियों के लिए उस युक्ति का पर्दाफाश करने और संबंधों की सही प्रकृति का अवधारण करने की स्वतंत्रता है। किंतु संव्यवहार का विधिक प्रभाव संव्यवहार के सार की जांच करके दूर नहीं किया जा सकता।"

23. **जियाजी राव काटन मिल्स लिमिटेड बनाम आय-कर और अतिलाभ-कर आयुक्त, बम्बई**[3] के मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि—

"प्रत्येक व्यक्ति अपने क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित करने के लिए हकदार है जिससे कि वह कराधान से बच सके, किंतु

[1] (1969) 72 आई० टी० आर 603.

[2] (1940) 8 आई० टी० आर० 522.

[3] (1958) 34 आई० टी० आर० 888.

ऐसी व्यवस्था सही और सद्भाविक होनी चाहिए; पाखंडपूर्ण अथवा कपटपूर्ण नहीं होनी चाहिए···।"

24. **आय-कर आयुक्त** बनाम **सकरलाल बाला भाई**[1] के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय ने यह कहा कि—

"कर परिवर्जन यह अनुध्यात करता है कि निर्धारिती को ऐसी रकम प्राप्त हुई है जो वस्तुतः और सही तौर पर ऐसी आय है, जो कराधेय है किंतु वह किसी युक्ति अथवा चाल के द्वारा कर के संदाय से बचता है। ऐसी युक्ति अथवा चाल ऊपरी तौर पर आय को ऐसे दिखा सकती है कि यह आय किसी अन्य व्यक्ति को प्रोद्भूत हुई है और साथ ही उस आय को निर्धारिती के प्रयोग और उपयोग के लिए उपलब्ध भी बनाती है—जैसा कि धारा 44(घ) के अंतर्गत आने वाले मामले में है अथवा पूंजीगत-आय के छद्मवेश के द्वारा आय की सही प्रकृति को छिपाती है, जैसाकि धारा 44(ङ) के अंतर्गत आने वाले मामले में है अथवा अनेक अन्य रूप धारण कर सकती है···। किंतु ऐसी कोई चाल अथवा युक्ति होनी चाहिए जो निर्धारिती को उस रकम पर कर का संदाय करने से बचने में समर्थ बनाती है जो वस्तुतः और तथ्यतः उसकी आय है। यदि निर्धारिती आय उत्पन्न करने वाली अपनी आस्तियों को इस प्रकार त्याग देता है, जिससे आस्तियों से उद्भूत होने वाली आय को प्राप्त करने का अधिकार जो तब तक निर्धारिती का था, किसी अन्य व्यक्ति को अंतरित कर दिया जाता है और किसी अन्य व्यक्ति में निहित हो जाता है, तो ऐसा करना कर दायित्व का कोई परिवर्जन नहीं है। आस्ति की आय का कोई भी भाग आय के रूप में अथवा आय के वेश में निर्धारिती के हाथों में नहीं जाता···।"

इस विनिश्चय की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा **आय-कर आयुक्त बनाम सकरलाल बाला भाई**[2] के मामले में की गई है।

25. हम **लटिल्ला** बनाम **आई० आर०**[3] के मामले में वाईकाउंट साइमन के मतों को भी दोहरा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं—

"आय के व्ययन से संबंधित युक्तिपूर्ण तरकीबें निकालने में

---

[1] (1968) 69 आई० टी० आर० 186.

[2] (1972) 86 आई० टी० आर० 2.

[3] 25 टी० सी० 107.

कुछ क्षेत्रों में, अभी हाल ही के वर्षों में, व्यापक कुशलता बढ़ी है, जिन तरकीबों से वे व्यक्ति जो इन्हें अंगीकार करने के लिए तैयार हैं, वे ब्रिटिश कराधान के समुचित भार में भाग लिए बिना ही ऐसी आय के समान लाभ प्राप्त करते हुए इस देश में निवास करने के लाभों का भी उपभोग कर सकें। ऐसी न्यायिक नजीरें उद्धृत की जा सकती हैं, जो इस बात की ओर संकेत करती हैं कि ऐसी तरकीबें कितनी ही व्यापक और कृत्रिम क्यों न हों, ये व्यक्ति जो इन तरकीबों को अंगीकार करते हैं, ऐसा करने के लिए 'हकदार' हैं। तथापि, इस बारे में कोई संदेह नहीं कि वे अपने विधिक अधिकारों के अंतर्गत ही हैं; किंतु इस बात के लिए कोई कारण नहीं कि उनके प्रयत्नों को अथवा उन व्यावसायिक महानुभावों के प्रयत्नों को जो इस मामले में उनकी सहायता करते हैं, चातुर्य के प्रशंसापूर्ण प्रयास माना जाना चाहिए अथवा एक अच्छे नागरिक के कर्त्तव्यों का निर्वहन माना जाना चाहिए। इसके विपरीत, ऐसी तरकीबों का एक परिणाम, यदि ये तरकीबें सफल होती हैं, निस्संदेह ऐसे अच्छे नागरिकों के उस बड़े समुदाय के कन्धों पर कर के बोझ में उस सीमा तक वृद्धि करना है, जो नागरिक इन युक्तियों को न तो जानना चाहते हैं और न ही यह जानते हैं कि इन युक्तियों को कैसे प्रयोग में लाया जाए। एक दूसरा परिणाम यह है कि विधानमंडल ने हमारी संहिता में संशोधन किए हैं जिनका उद्देश्य ऐसी स्कीमों की प्रभावपूर्णता को नष्ट करना है।"

26. कराधान की योजना विधिपूर्ण हो सकती है परन्तु यह तब जबकि यह विधि की रूपरेखा के भीतर हो। छद्मपूर्ण युक्तियां (आभासी युक्तियां) कर योजना का भाग नहीं हो सकतीं और इस विश्वास को समर्थन देना या इसे स्वीकार करना गलत है कि संदिग्ध तरीकों का अवलंब लेकर कर संदाय से बचना एक सम्मानजनक बात है। छद्मपूर्ण युक्तियों का सहारा लिए बिना ईमानदारी पूर्ण रूप से कर संदाय करना प्रत्येक नागरिक की बाध्यता है।

27. इस पहलू पर हममें से एक अर्थात् न्या० चिन्नप्पा रेड्डी ने एक पृथक् और विस्तृत राय प्रस्थापित की है जिससे हम सहमत हैं।

28. अतः हमारी राय में इस अपील में कोई गुणता नहीं है और इसे खर्चे सहित खारिज किया जाता है। सुनवाई की फीस 5 हजार रुपये निर्धारित की जाती है। हम यह और कहना चाहेंगे कि अब चूंकि स्थिति की एक

स्पष्ट तस्वीर सामने आ चुकी है, इसलिए आंध्र प्रदेश राज्य को, यदि आवश्यक हो तो अन्य समुचित संशोधनों के द्वारा उक्त विषय से संबंधित विधि को सुव्यवस्थित करना चाहिए ।

29. इजाजत मंजूर करते हुए और रोक कार्यवाही अनुज्ञात करते हुए इस न्यायालय ने यह निर्देश दिया था कि निर्धारण प्राधिकारी के समाधानपर्यन्त कर के लिए बैंक की गारंटी पेश की जाए, और इस अपील में प्रत्यर्थी के सफल होने की दशा में अपीलार्थी 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदाय करेगा। अब प्रत्यर्थी विधि के अनुसार राज्य से अपनी इस शोध्य रकम को प्राप्त करने की कार्यवाही कर सकते हैं ।

न्या० चिन्नप्पा रेड्डी—

30. यद्यपि मेरे विद्वान् बंधु न्या० रंगनाथ मिश्र द्वारा सुनाए गए निर्णय से मैं पूर्णतः सहमत हूं फिर भी मैं कुछ पैरे जोड़ना चाहता हूं; विशेषकर (कर) परिवर्जन के "शोकिया" विषय के बारे में जो कुछ उन्होंने कहा है उसे अनुपूरित करने के लिए यह अतिरिक्त राय प्रकट करने का मेरा बहाना यह है कि कर परिवर्जन (अवोयडेंस) को सुव्यवस्थित करने और विधिपूर्ण बनाने के चातुर्यपूर्ण प्रयासों ने मुझे सदैव ही आश्चर्यचकित किया है और मेरा मनोरंजन भी किया है तथा मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि सरकारी कोष से धन-परिवर्जन के लिए लोग कैसे-कैसे बहाने ढूंढ़ निकालने और अपने आपको इस कार्य के अनुकूल बनाने के लिए कितने तैयार रहते हैं ।

31. कर परिवर्जन की सबसे सूक्ष्म परिभाषा जो अभी तक मेरे सामने आयी है वह है "विधि का उल्लंघन किये बिना कर प्रवंचन की कला ।" कर परिवर्जन और कर अपवंचन की (इवेजन) की संकल्पनाओं में अंतर करने के प्रयास में पर्याप्त विधिक वितण्डता और न्यायिक प्रतिपादना का सहारा लिया गया है और उस अदृश्य रेखा का पता लगाने का प्रयास किया गया है जो इन दो संकल्पनाओं के बीच विद्यमान है और जो एक संकल्पना को दूसरे से प्रभेदित करती है । कर परिवर्जन (टैक्स अवोयडेंस), ऐसा प्रतीत होता है, वैध है किंतु कर अपवंचन (टैक्स इवेजन) अवैध है ।

32. यद्यपि आरम्भतः विधि यह थी, और मेरे विचार में अब भी विधि यही है कि, कर के बारे में कोई साम्या नहीं है । कर के बारे में कोई उपधारणा नहीं है । न तो इसमें कुछ जोड़ा जा सकता है और न ही इससे कुछ विवक्षित है । दो विश्व युद्धों के बीच की अवधि के दौरान यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया और विवक्षित हुआ कि व्यक्तियों के लिए आय-कर का परिवर्जन करने की बिलकुल स्वतंत्रता है—यदि वे ऐसा वैध रूप से कर

1985(4) eILR(PAT) SC 57

सकते हैं। कुछ दिनों तक ऐसा लगा मानो कि परिवर्जन को बड़े प्रेमपूर्वक देखा जाता था। **इनलैंड रवैन्यु कमिशनर्स** बनाम **फिसर्स एक्जीक्यूटर्स**[1] के मामले में लार्ड सुमनेर ने यह कहा—

> "उच्चतम प्राधिकारियों ने सदैव ही इस बात को माना है कि प्रत्येक नागरिक अपने क्रियाकलापों को इस प्रकार से सुव्यवस्थित करने का हकदार है जिससे कि उस पर "क्राउन" द्वारा अधिरोपित कर न लग सके—जहां तक वह ऐसा विधि के अंतर्गत कर सकता है; और यह कि वह विधिमान्य रूप से किसी अभिव्यक्त शर्त का अथवा ऐसी किन्हीं भावनाओं के लाभ का दावा कर सकता है जो वह कराधान अधिनियमों में अपने पक्ष में पा सकता है। ऐसा करने में न तो वह किसी बाध्यता के अधीन आता है और न वह कोई अपराध ही करता है।"

33. जो कुछ लार्ड सुमनेर ने कहा था उसे ही दोहराते हुए लार्ड टॉमलिन ने **इनलैंड रवैन्यू कमिशनर्स** बनाम **ड्यूक आफ वैस्टमिंस्टर**[2] में उस समय कर परिवर्जन के बारे में प्रचलित दृष्टिकोण को उपदर्शित करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

> "प्रत्येक व्यक्ति अपने क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित करने का हकदार है, यदि वह कर सकता है, कि समुचित अधिनियमों के अधीन अधिरोपित किया जाने वाला कर उस कर से कम हो जो अन्यथा अधिरोपित होगा। यदि वह इस प्रकार का परिणाम प्राप्त करने के लिए अपने क्रियाकलापों को सुव्यवस्थित करने में सफल हो जाता है तो अंतर्देशीय राजस्व के आयुक्त या उसके (करदाता के) सहयोगी करदाता उसकी विचक्षणता को कितना ही बुरा बताएं, उसे बढ़ा हुआ कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।"

34. इसके पश्चात् दूसरा विश्व युद्ध छिड़ा और इसी कारण भारी मुनाफाखोरी और तस्करी का भी बोलबाला हुआ—जो आज तक भी चालू है, किंतु बड़े पैमाने पर कर परिवर्जन के बारे में न्यायालयों के दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन हुआ और यह दृष्टिकोण कठोर भी हो गया तथा **लार्ड हावर्ड डी० वालडीन** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[3] के मामले में मास्टर आफ

---

1 (1926) ए० सी० 395.

2 (1936) ए० सी 1.

3 (1942) 1 के० बी० 389.

1985(4) eILR(PAT) SC 57

रोल्स ग्रीन ने कर परिवर्जन विरोधी धारा के अर्थान्वयन पर विचार करते हुए यह कहा था कि—

"अनेक वर्षों से विधानमंडल तथा उन व्यक्तियों के बीच चाल-बाजी का संघर्ष चल रहा है जो कराधान का बोझ अपने कंधों से उठाकर अपने साथी नागरिकों के कंधों पर डालने की दिशा में सोचते रहे हैं। इस संघर्ष में विधानमंडल अपने विरोधियों के चातुर्य, दृढ़ निश्चय और साधन-समर्थता के द्वारा पराजित हो गया है, जिन विरोधियों में से प्रस्तुत अपीलार्थी भी पूर्णतः सफल हुआ है। हमें यह निष्कर्ष निकालने पर बिल्कुल भी कोई खेद नहीं होगा कि विधान-मंडल ने कठोरतम शास्तियां अधिरोपित करके इस संघर्ष को समाप्त करने का दृढ़ निश्चय किया है। ऐसा करदाता, जो आग से खेलता है, उंगलियों के जलने की शिकायत करने की धृष्टता नहीं कर सकता।"

35. ऐसे ही विचार अभिव्यक्त करते हुए तथा कर परिवर्जन के नैतिक पहलुओं की समीक्षा करते हुए **लटिल्ला** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[1] में लार्ड साइमन ने यह कहा—

"हाल ही के कुछ वर्षों में आय के व्ययन के ऐसे तरीके ढूंढ़ निकालने का प्रयास करने में, कुछ क्षेत्रों में, बहुत कुछ विचक्षणता बढ़ गई है, जिन तरीकों से वे व्यक्ति, जो इनको अंगीकार करने के लिए तैयार हैं, ब्रिटिश कराधान के समानुपातिक बोझ में भाग लिए बिना ऐसी आय के बराबर आय प्राप्त करते हुए, ये लोग इस देश में निवासियों के फायदों का उपभोग कर सकें। न्यायिक नजीरें यह बताते हुए उद्धृत की जा सकती हैं कि ऐसे तरीके कितने ही व्यापक और कृत्रिम क्यों न हों, जो लोग इन्हें अंगीकार करते हैं वे ऐसा करने के लिए 'हकदार' हैं। निस्संदेह, इस बारे में कोई संदेह नहीं कि वे अपने विधिक अधिकारों के भीतर ही कार्य करते हैं, किंतु इस बात के लिए कोई कारण नहीं कि उनके प्रयासों को अथवा उन व्यवसायिक व्यक्तियों के प्रयासों को, जो इस मामले में इनकी सहायता करते हैं, विचक्षणता का प्रशंसनीय प्रयास क्यों न माना जाना चाहिए अथवा इसे अच्छे नागरिक के कर्त्तव्यों का निर्वहन क्यों नहीं माना जाना चाहिए। इसके विपरीत, ऐसे तरीकों का एक परिणाम, यदि ये तरीके

[1] (1943) ए० सी० 377.

सफल होते हैं, निस्संदेह उन अच्छे नागरिकों के बड़े समूह के कंधों पर कर का बोझ उस सीमा तक बढ़ा देना है, जो नागरिक इन युक्तियों को अपनाने की न तो इच्छा रखते हैं और न यह जानते हैं कि इन्हें कैसे अपनाया जाए।"

36. **गिरफित** बनाम **जे० पी० हरिजन लिमिटेड**[1], **मोर्गन** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[2], **पब्लिक ट्रस्टी** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[3] आदि अनेक मामलों में लार्ड डेनिंग ने बार-बार कर परिवर्जन की स्कीमों के प्रति निर्देश किया है और इन्हें जादूगर रूपी वकीलों के जादूई करतब बताया है। लार्ड हर्मन ने भी लार्ड डेनिंग के ही शब्दों में कर परिवर्जन की स्कीम के बारे में यह कहा है कि यह स्कीम ऐसी है जो संदेहास्पद प्रतीत होती है और कहा कि "यह एक बड़ी शानदार स्कीम है···और यह इतनी अच्छी स्कीम है कि यह सच नहीं हो सकती। विधि के क्षेत्र में भी यह इतनी अच्छी स्कीम है कि सच नहीं हो सकती किंतु इससे काम नहीं चलेगा।" (देखिए **कैम्पबैल** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[4]) वैस्टम सैटलमेंट्स के मामले में न्या० स्टाम्प ने यह मत व्यक्त किया कि—

> "विधानमंडल के वित्तीय आशय को असफल बनाने वाली ऐसी युक्तियों की कुछ सीमा होनी चाहिए जिनका मुकाबला न्यायालय को करना चाहिए। मेरी राय में यह प्रस्थापनाएं उस सीमा से बाहर जाती हैं···। मैं इस आवेदन से प्रभावित नहीं हुआ हूं जो कर परिवर्जन का ऐसा तुच्छ प्रयास है जिसे मंजूरी नहीं देनी चाहिए क्योंकि यह आवेदन कराधान के दायित्व के विधिसम्मत परिवर्जन से बिल्कुल भिन्न है।"

37. **ग्रीनबर्ग** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[5] में अग्रिम लाभांश से वंचित करके कर-परिवर्जन की स्कीम पर विचार करते समय लार्ड रीड ने यह मत व्यक्त किया कि—

> "···हम इस साधारण और महत्त्वपूर्ण नियम से बहुत दूर चले गए प्रतीत होते हैं कि किसी नागरिक पर स्पष्ट शब्दों के सिवाय कर

---

1 (1983) ए० सी० 1.

2 (1963) चांसरी 438.

3 (1965) चांसरी 286.

4 (1967) चांसरी 651.

5 (1971) 3 आल इंग्लैंड रिपोर्ट 136.

1985(4) eILR(PAT) SC 57

अधिरोपित नहीं किया जा सकता। किंतु मुझे यह मान लेना चाहिए कि स्पष्ट और साधारण शब्द ऐसी विचक्षण स्कीमों की बहुलता को पहले ही रोकने या उनका पूर्वानुमान लगाने के लिए मुश्किल से ही पर्याप्त होते हैं जो (स्कीमें) कराधान का अपवंचन करने के लिए निरंतर तैयार की जा रही हैं। संसद् इस प्रकार के कर अपवंचन को रोकने के लिए उचित रूप से कृतसंकल्प है और यदि न्यायालय सामान्य पद्यांशों को बहुत व्यापक अर्थ देना असंभव पाते हैं, तो संसद् के लिए एकमात्र विकल्प वैसा कदम उठाना है जैसा कुछ अन्य देशों ने उठाया है और बहुत व्यापक प्रकृति के ऐसे कानून पारित किए हैं जो सामान्य सदाशय वाले व्यक्ति को उससे भी अधिक खतरे में डाल देंगे जो खतरा ऐसे उपबंधों के व्यापक निर्वहन से उत्पन्न होता है, जिन (उपबंधों) पर हम अब विचार कर रहे हैं।"

....

"मेरा यह विचार है कि इन शाब्दिक कठिनाइयों का वास्तविक स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि ऐसी घोरतम जटिलताओं वाले विधान में जैसा यहां हमारे समक्ष इस मामले में है, भाषा के प्रयोग में ऐसा सामंजस्य बनाए रखना किसी भी प्रारूपकार के लिए मानवीय रूप से संभव नहीं है, जिस सामंजस्य की आम तौर पर हमें तलाश है। निस्संदेह, मुझे कई बार यह संदेह हो जाता है कि कानूनी निर्वचन के हमारे सामान्य और अतिसावधान तरीके शाब्दिक सूक्ष्मताओं पर बहुत अधिक ध्यान देकर और सम्पूर्ण उपबंधों पर बहुत कम ध्यान देकर, हमें विपथगामी कर देते हैं।"

38. कर-परिवर्जन की स्कीमों के विरुद्ध विधियां बराबर बनाई जाती रहीं और इस प्रकार से "वैस्ट मिनिस्टर" और "फीसर्स एक्जीक्यूटर्स" के सिद्धांत से पर्याप्त विचलन हो गया है। **डब्ल्यू० टी० रामसे** बनाम **इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स**[1] के मामले में हाऊस आफ लाड्र्स को कर-परिवर्जन की ऐसी स्कीम पर विचार करना पड़ा था जिसमें अनेक संव्यवहारों की श्रृंखलाएं या समूह थे जिनमें से प्रत्येक संव्यवहार अपने आप में सद्भाविक था किन्तु इन सबका सामूहिक परिणाम कर का परिवर्जन था। लार्ड विलबर फोर्स ने बड़े जोरदार शब्दों में यह मत व्यक्त किया कि—

"यदि कोई दस्तावेज या संव्यवहार सद्भाविक है, तो न्यायालय

---

1 (1982) ए० सी० 300.

इसके पीछे किसी काल्पनिक अन्तर्निहित सार की परीक्षा नहीं कर सकता। इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स **बनाम** ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर में व्यक्त किया गया यह सुज्ञात सिद्धांत है। यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है किन्तु इसका अतिशय उल्लेख या अतिविंस्तार नहीं किया जाना चाहिए। सद्‌भाविक पाए जाने वाले दस्तावेजों या संव्यवहारों को यथावत स्वीकार करने के लिए न्यायालय से निवेदन करते हुए भी, यह बात किसी दस्तावेज या संव्यवहार को उस संदर्भ से भिन्न, जिस संदर्भ या विषय से संबंधित वह दस्तावेज या संव्यवहार वस्तुतः है; अनदेखी करते हुए उस पर विचार करने के लिए न्यायालय को बाध्य नहीं करती। यदि ऐसा देखा जा सकता है कि कोई दस्तावेज या संव्यवहार, संव्यवहारों की एक श्रृंखला का सम्पर्कसूत्र या भाग है या सम्पूर्ण रूप में आशयित एक व्यापक संव्यवहार का एक अंश है, तो इस सिद्धांत में उस दस्तावेज को ऐसा माने जाने से रोकने के लिए कोई बात नहीं है; ऐसा करने का यह अर्थ नहीं है कि प्ररूप (फार्म) को सार (सबस्टेन्स) पर या सार को प्ररूप पर प्राथमिकता दी जा रही है। ऐसे किसी संव्यवहार की विधिक प्रकृति को सुनिश्चित करना न्यायालय का कर्त्तव्य है, जिस पर कर अधिरोपित किया जाना है या कर का परिणाम अधिरोपित किया जाना है और यदि प्रवर्तित होने के लिए आशयित संव्यवहारों की श्रृंखला या समूह से जैसा कुछ प्रकट होता है, तो उसे वैसी ही श्रृंखला या समूह माना जाना चाहिए। आय-कर और पूंजी अभिलाभ-कर से संबंधित विधि में इसके बारे में नजीर है। देखिए—चिन्न **बनाम** हॉक्स ट्रैसर [(1981) ए० सी० 533] और इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स **बनाम** प्लूमर [(1980) ए० सी० 896]।

किसी मामले विशेष पर विचार करते हुए आयुक्तों के लिए अपने बारे में ऐसा समझना गलत है और अनावश्यक आत्म-परिसीमन है कि वे अपने इस निष्कर्ष के द्वारा कि दस्तावेज या संव्यवहार जाली है कि ये इस बात पर विचार करने से प्रवारित है—जैसा कि स्वयं दस्तावेजों द्वारा प्रकट होता है अथवा पक्षकारों के स्पष्ट आशय से प्रकट होता है—कि सुसंगत संव्यवहार/दस्तावेज वस्तुतः क्या है। वैस्ट मिनिस्टर सिद्धांत अथवा किसी अन्य नजीर के अधीन वे किसी ऐसे समेकित व्यवहार में, जिसका आशय सम्पूर्णरूपेण किये जाने का

है, प्रत्येक पृथक् कदम पर अलग से विचार करने के लिए बाध्य नहीं है।"

बाद में उन्होंने फिर यह मत व्यक्त किया कि—

"......करदाता की ओर से यह कहा गया था कि राजस्व विभाग की व्यापक दलील को स्वीकार करने का अर्थ है स्वीकृत और सुस्थापित सिद्धांतों को नामंजूर करना और यदि कर परिवर्जन की स्कीमों पर ऐसे साधारण आक्षेप को विधिमान्य बनाया जाना है, जैसा कि राजस्व विभाग सुझाव देता है, तो यह विषय संसद् के विचार का विषय है। न्यायालयों का कृत्य उस विधान को कड़ाई से और सही तौर पर लागू करना है, जो संसद् ने अधिनियमित किया है। और यदि करदाता भार से बच निकलता है तो संसद् के लिए ही, कि यदि वह इस परिणाम को नामंजूर करती है, इस खाई को पाटना है। यह दावा किया गया है कि कर परिवर्जन के विरुद्ध सामान्य सिद्धांत को अधिकथित करना संसद् का कर्त्तव्य है। हमारे निवेदन करने पर इस संबंध में हमें संसद् द्वारा अधिनियमित ऐसे विभिन्न अधिनियम निर्दिष्ट किए गए जो (अधिनियम) संसद् ने समय-समय पर कुछ साधारण आदेश द्वारा कर परिवर्जन को रोकने के लिए प्रयुक्त किए हैं। इनमें सबसे व्यापक इन्कम एंड कारपोरेशन टैक्सेज ऐक्ट, 1970 की धारा 460 और इसके बाद की धाराएं हैं। हमें आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की विधियों की सुज्ञात धाराएं भी निर्दिष्ट की गई थीं (आस्ट्रेलिया : इन्कम टैक्स एसेसमेंट ऐक्ट, 1936-51, धारा 260, न्यूजीलैंड इन्कम टैक्स ऐक्ट, 1976, धारा 99, जिसने पूर्ववर्ती विधान को अतिष्ठित कर दिया है)। इसके अतिरिक्त यह और बताया गया था कि (वित्त अधिनियम, 1965 से प्रारंभ करके) पूंजी अभिलाभ कर विधान में धारा 460 का तद्नुरूपी कोई उपबंध नहीं है। अतः, यह कहा गया था कि ज्यों-ज्यों कमियां पाई जाती हैं, त्यों-त्यों उनको दूर करने की रीति के अनुसार पूंजी अभिलाभ कर पर विचार करने के लिए मामले को छोड़ देने के लिए आशय का पता लगाया जाना चाहिए : यह कि वर्तमान स्कीम जैसी स्कीमों पर इस प्रकार से विचार किया जा सकता था, इस बात की पुष्टि "मूल्य अंतरण" जैसे पश्चात्वर्ती विधान द्वारा पुष्ट/पुष्टि की गई है अर्थात् पूंजी अभिलाभ कर अधिनियम, 1979 की धारा 25 और इसके बाद की धाराएं। इन दलीलों पर गम्भीरता से विचार

किए जाने की आवश्यकता है। वस्तुतः फेडरल कमीशनर्स आफ टैक्सेशन बनाम वैस्ट ट्रेडर्स प्राइवेट लिमिटेड [(1980) 30 ए० एल० आर० 353, 354, 355] के हाल ही के मामले में मु० न्या० बारविक को ये दलीलें रुचिकर प्रतीत हुई थीं।

मेरे मन में उन सिद्धांतों का पूरा सम्मान है जिनका उल्लेख किया गया है, किंतु मैं यह नहीं समझता कि इनके कारण उस दृष्टिकोण को अपवर्जित कर दिया जाना चाहिए, जिनके लिए सरकार दलील देती है। इसका अर्थ नया सिद्धांत पुरःस्थापित करना नहीं है : इसका अर्थ होगा विधि में इनकी प्रकृति का अवधारण करने के लिए और विद्यमान विधान से इनका संबंध स्थापित करने के लिए निस्संदेह न्यायालयों की शक्ति और कर्त्तव्य को ऐसी नई और सूक्ष्म विधिक युक्तियों को लागू करना। ज्यों ज्यों कर परिवर्तन की तरकीबों में प्रगति होती है और उनमें तकनीकी सुधार होता है, त्यों-त्यों न्यायालय मात्र एक दर्शक के रूप में ही बना रहने के लिए बाध्य नहीं है। न्यायालयों की ऐसी निष्क्रियता के परिणामस्वरूप या तो कर की हानि होती है जिसके कारण अन्य करदाताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अथवा संसद् पर कानूनों की भीड़ का बोझ और बढ़ जाता है अथवा (अधिसंभाव्यतः) इसके दोनों ही परिणाम होते हैं। अति समेकित परिस्थितियों में न्यायालयों को क्रमशः विश्लेषण करने वाला ऐसा दृष्टिकोण बनाने के लिए बाध्य करना, जिसे स्वयं पक्षकारों ने ही नकार दिया था, सही न्यायिक प्रक्रिया की पुष्टि की बजाए इससे वंचित किए जाने के समान होगा।

प्रत्येक मामले में तथ्यों को सिद्ध किया जाना चाहिए और विधिक विश्लेषण भी किया जाना चाहिए : पक्षकारों के अपने आशय से अनुरूप निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालयों को समर्थ बनाने के लिए विधान बनाना न तो अपेक्षित ही है और न वांछनीय ही।

पूंजी अभिलाभ-कर वास्तविकता के क्षेत्र में कार्य करने के लिए अधिनियमित किया गया था, किसी काल्पनिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए नहीं।

39. इंग्लैंड में कर संबंधी विधियों के निर्वचन के क्षेत्र में परिवर्तन के बिंदु के रूप में रामसे के मामले के महत्त्व और वैस्ट मिनिस्टर सिद्धांत के

निबंधनों से विचलन के महत्त्व को **इनलैंड रवैन्यू कमिशनर्स बनाम बर्मा आयल कम्पनी लिमिटेड**[1] के मामले में स्पष्ट किया गया था, जहां कि लार्ड डिप्लाक ने यह कहा कि—

"यह सुझाव देना कुटिलता होगी और कर परिवर्जन की व्यापक स्कीमों के बारे में सलाह देने वालों के लिए यह अनुमान लगाना खतरनाक होगा कि रामसे के मामले ने ऐसे पूर्व-आदिष्ट संव्यवहारों की श्रृंखला (चाहे उसमें किसी वैध वाणिज्यिक उद्देश्य की प्राप्ति शामिल है अथवा नहीं) के बारे में इस सदन द्वारा अपनाई गई न्यायिक भूमिका और दृष्टिकोण में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है, जिन संव्यवहारों में ऐसे अन्य कदम अंतःस्थापित होते हैं जिनका उस कर-दायित्व का परिवर्जन करने के सिवाय कोई और वाणिज्यिक प्रयोजन नहीं होता है, जो कर उन विशिष्ट प्रक्रमों/प्रयासों के अभाव में संदेय हो गया होता। अंतर मात्र दृष्टिकोण में है। यह बात इस सदन के किसी पूर्ववर्ती विनिश्चय को नामंजूर करना आवश्यक नहीं बनाती; किंतु यह बात इनलैंड रवैन्यू कमिशनर्स **बनाम** ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर [(1936) ए० सी० 1, 19, (1935) आल० इंग्लैंड रिपोर्ट्स रिप्रिंटिड 259, पृष्ठ 267] के मामले में अनेक बार उद्धृत लार्ड टामलिन के इस कथन के बारे में प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह ऐसा कर सकता है तो, अपने क्रियाकलापों को इस प्रकार सुव्यवस्थित कर सकने का हकदार है जिससे कि समुचित अधिनियमों के अंतर्गत अधिरोपित कर उस कर से कम हो सके, जो अन्यथा होता। यह अवश्य सिद्ध करती है कि उक्त कथन हमें इस बारे में मामूली-सा या कुछ भी बताता कि यदि कारबार के संव्यवहार सीधे तरीके से किए जाते हैं तो उस दशा में जो कर उस पर लगेगा, उस कर को कम करने के लिए अपने क्रियाकलापों को सुव्यवस्थित करने के कौन से तरीके न्यायालय द्वारा प्रभावी माने जाएंगे।"

लाड कारमेन ने यह कहा कि—

"सर्वप्रथम यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है कि व्यापारिक समुदाय को (और उनके सलाहकारों को शामिल करते हुए अन्य व्यक्तियों को) इस बात की प्रशंसा करनी चाहिए, जिस पर मेरे

---

[1] (1982) एस० टी० सी० 30.

विद्वान् बंधु लार्ड डिप्लाक ने भी बल दिया है कि रामसे का मामला कर परिवर्जन की स्कीमों के बारे में 'हाऊस आफ लार्ड्स के द्वारा अपनी न्यायिक भूमिका में अपनाए गए दृष्टिकोण में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन' दर्शाता है। दूसरे, किसी ऐसी स्कीम पर विचार करते समय इस बात का अवधारण करने के लिए यह विश्लेषण करना अब बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वस्तुत: लाभ, अभिलाभ या हानि कहां है।"

40. परिवर्तन की लहर बराबर जारी रही और **फर्निस बनाम डाउसन**[1] में रामसे के मामले के मतों को दोहराया गया था। लार्ड ब्राइटमेन ने यह मत व्यक्त किया कि—

"इस तथ्य ने कि न्यायालय ने यह स्वीकार कर लिया है कि एक संव्यवहार में प्रत्येक प्रयास/कदम सद्भाविक कदम था जो आशयित विधिक परिणाम उत्पन्न कर रहा था, वित्तीय परिणामों का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए प्रत्येक प्रयास/कदम पर अलग से विचार करने के लिए न्यायालय को निर्बंधित नहीं किया था।"

उन्होंने यह और कहा कि—

"महोदय, मेरी राय में नए दृष्टिकोण का तर्क यह है कि कर से बचने की पूर्वनियोजित स्कीम में वित्तीय प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित के बीच कोई अंतर नहीं किया जाना होता है क्योंकि वस्तुत: ऐसा कोई अंतर है ही नहीं, अर्थात् (1) ऐसे प्रयासों/कदमों की श्रृंखला, जिनका ऐसी व्यवस्था के कारण पूर्णत: अनुपालन किया जाता है, जो व्यवस्था बाध्यकर संविदा नहीं है और (ii) ऐसे प्रयासों/कदमों की वैसी ही श्रृंखला जिनका पूर्णत: अनुसरण किया जाता इसलिए है क्योंकि इसके भागीदार प्रत्येक प्रयास/कदम का क्रमबद्ध रूप में पालन करने के लिए संविदास्वरूप आबद्ध हैं। किसी सांविदानियक मामले में वित्तीय परिणामों को स्वभाविकत: संविदा की दृष्टि से सहमत परिणामों को देखते हुए अवधारण किया जाना होगा।"

41. इस मामले में लार्ड फ्रेजर ने रामसे के मामले के सिद्धांत को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया—

"....रामसे के मामले के विनिश्चय का सही सिद्धांत यह था कि संव्यवहारों की पूर्व निश्चित श्रृंखला, जिसका यथावत् प्रचालन

[1] (1984) 1 आल० इं० रिपोर्ट्स 530.

आशयित था, के वित्तीय परिणामों को साधारणत: सम्पूर्ण श्रृंखला पर एक साथ विचार करके सुनिश्चित किया जाना होता है, और स्कीम को विभाजित करके तथा प्रत्येक संव्यवहार पर अलग से विचार करके नहीं।"

लार्ड कारमैन ने अपने ही विशेष अंदाज में यह मत व्यक्त किया कि—

"विधि का विकास प्रत्येक मामले में क्रमिक है। डब्ल्यू० टी० रामसे लिमिटेड **बनाम** इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स [(1981) 1 आल० इं० रिपोर्ट्स 865, पृ० 872=(1982) ए० सी० 300, पृ० 324] में लार्ड विलबर फोर्स ने विधि के "विकासशील सिद्धांत" के प्रति निर्देश किया। रामसे के मामले में हाऊस आफ लार्ड्स द्वारा निश्चितता से जो कुछ सिद्ध किया गया है वह यह है कि किस बात को अस्वीकार्य कर-परिवर्जन में क्या होता है या क्या नहीं होता, इस बात का अवधारण यह न्यायिक प्रक्रिया द्वारा किए जाने वाले विकास के लायक विषय है। आगे पड़ने वाले रास्ते से संबंधित सर्वोत्तम मानचित्र जो मुझे प्रतीत होता है वह, मानचित्र बनाने की प्रक्रिया में संलग्न सभी के प्रति सम्मान सहित, व इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स **बनाम** बर्मा आयल कम्पनी लिमिटेड (1982, एस० टी० सी० 30, पृ० 32) के मामले में लार्ड डिप्लाक के शब्द ही सर्वोत्तम मानचित्र प्रतीत होते हैं जिन शब्दों को मेरे विद्वान् और महान् बंधु लार्ड ब्राइटमैन ने अपने भाषण में उद्धृत किया है। इन शब्दों की विधि में लार्ड ट्रॉमलिन द्वारा इनलैंड रवैन्यू कमीशनर्स **बनाम** ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर [(1936) ए० सी० 1, पृ० 19=(1935) आल० इं० टैक्स रिपोर्ट्स 259, पृ० 267] में लार्ड टामलिन द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत के लिए कि प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह ऐसा कर सकता है, अपने क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित करने के लिए हकदार है जिससे कि कर का भार कम हो जाए। वह सीमा जिसके भीतर इस सिद्धांत को प्रवर्तित होना है, उसकी जांच और उसका अवधारण न्यायिकत: किया जाना शेष है। भले ही, न्यायाधीशों के लिए यह कार्य कठिन है, किंतु यह एक ऐसा कार्य है जो कि विधान बनाने के हृदयहीन उपकरण की शक्ति से परे है। किसी कानून में चाहे कुछ भी उपबंध किया गया हो, न्यायालयों द्वारा इसका निर्वचन किया जाना होता है और इसे लागू किया जाना होता है; और अंतत: न्यायाधीश द्वारा विरचित

इस विधि के क्षेत्र में यह विधान यह साबित करेगा कि न्याय की खोज में हमारी छद्मपूर्ण यात्रा का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा।"

लार्ड रासकिल ने इस बात को और भी अधिक जोरदार शब्दों में निम्नलिखित रूप में कहा है—

"वह गलती, यदि मैं गलती शब्द को कहने का साहस कर सकता हूं, जो अवर न्यायालय करते हैं, यह है कि उन्होंने पीछे सन् 1936 के निर्णय की ओर देखा है और भविष्य में वर्ष 1982 की ओर नहीं देखा। उन्होंने रामसे के मामले में [(1981) 1 आल० इं० रिपोर्ट्स 865, पृ० 872, 873, 881=(1982) ए० सी० 300, पृ० 325, 337] पर लार्ड विलबर फोर्स और लार्ड फ्रेजर के निर्णय के पद्यांशों के सही महत्त्व को नहीं समझा प्रतीत होता है, और इससे अधिक बर्मा आयल के मामले में [(1982) एस० टी० सी० 30, पृ० 32, 39] लार्ड डिप्लाक और लार्ड कारमैन द्वारा उन पद्यांशों में दी गयी चेतावनी को नहीं समझा है जिनके प्रति मेरे महान् और विद्वान् बंधु लार्ड ब्राइटमैन ने निर्देश किया है और जिसे अब मैं यहां नहीं दोहराऊंगा। संभवत: दी गई उस चेतावनी को दोहराना उचित होगा, यद्यपि यह लार्ड एटकिन द्वारा एक दूसरे संदर्भ में दी गयी थी, जिन्होंने यूनाइटेड आस्ट्रेलिया लिमिटेड **बनाम** बर्कलेज बैंक लिमिटेड [(1940) 4 आल० इं० रिपोर्ट्स 20, पृ० 37=(1941) ए० सी० 1, पृ० 29] में ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर के मामले में स्वयं ही विसम्मति प्रकट की थी : जब भूतकाल के ये भूत-मध्ययुगीन अपनी जंजीरों (बाध्यताओं) को खनखनाते हुए न्याय के पथ में खड़े होते हैं, तो न्यायाधीश के लिए सबसे उचित रास्ता बिल्कुल ही विचलित हुए बिना इन पथों से गुजर जाना है। केवल अर्ध शताब्दी पूर्व सन् 1936 को मध्य युग का भाग नहीं कहा जा सकता, किंतु ड्यूक आफ वैस्ट मिनिस्टर के मामले का और उसके संव्यवहार का भूत, जो अपने माली और अपने स्टाफ के अन्य सदस्यों के साथ किया गया था, चाहे यह संव्यवहार एकमात्र अकेला था अथवा एक समेकित व्यवहार था, बहुत दिनों तक विधि की शाखा के प्रशासन को भयभीत करता रहा है। मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने यह आशा की थी कि इस भूत को रामसे और बर्मा के मामलों के विनिश्चयों से शांति प्राप्त हो गई होगी। किंतु बड़े दुख की बात है कि ऐसा नहीं हुआ है। संभवत:

इन मामलों में इस सदन का विनिश्चय अब जादूगरी के रूप में कार्य करेगा ।"

42. इस प्रकार से (लार्ड रॉसकिल के शब्दों में) वैस्ट मिनिस्टर के मामले के भूत ने इंग्लैंड में अपना प्रभाव छोड़ा है। क्या इस भूत को भारत में भी अपना सिर उठाने दिया जाए ?

43. मैंने इंगलिश मामलों के प्रति कुछ विस्तार से निर्देश किया है—यह दिखाने के लिए कि अपनी जन्म-भूमि में ही वैस्ट मिनिस्टर के सिद्धांत को सम्मानजनक रूप से दफना दिया गया है और उसी देश में जहां कि "कर परिवर्जन" (टैक्स एवायडेंस) के पद ने जन्म लिया था, कर-परिवर्जन के संबंध में न्यायिक दृष्टिकोण बदल गया है और वह मुस्कान जो कि भले ही छद्मपूर्ण रही हो अथवा प्रेमपूर्ण रही हो, अब पूरे तरीके से एक भ्रकुटी में बदल चुकी है। अब न्यायालय संव्यवहार की सद्भाविकता पर ही विचार नहीं करते, अपितु वित्तीय प्रयोजनों के लिए इसके आशयित प्रभाव पर भी विचार करते हैं। अब कोई भी मात्र यह कहकर कर परिवर्जन की स्कीम के साथ बचकर नहीं जा सकता कि इस स्कीम के बारे में कुछ भी अवैध नहीं है।

44. कुछ वर्ष पूर्व, "लंडन टाइम्स" के एक संवाददाता द्वारा कर परिवर्जन की प्रतिरक्षा करते हुए एक प्रयास किया गया था। उसने कहा था कि—

> "करदाता विधि का पालन करने के लिए नैतिक दृष्टि से आबद्ध है, किन्तु वह विधि से परे बाध्य नहीं है, क्योंकि विधि से अलग होकर कराधान, बलाद्ग्रहण और भयादोहन होगा। जैसा कि दांडिक विधियों के पीछे है, कराधान संबंधी विधि के पीछे कोई स्वतंत्र नैतिक बाध्यता नहीं है। अतः, जब करदाता ने विधि का पालन कर लिया है, तो उसने वह सब कुछ कर लिया है जो नैतिकता अपेक्षा करती है।"

उन्होंने यह और कहा कि—

> "यह कहा जाता है कि कर परिवर्जन के द्वारा वह कर का भार कुछ अन्य करदाताओं पर डाल देता है। किंतु यह बिल्कुल सही बात नहीं है, क्योंकि इस प्रकार होने वाली कमी व्यय कम करके पूरी की जा सकती है•••क्या यह अच्छी बात नहीं है कि बहुमत (सरकार) के द्वारा अन्यायपूर्ण कराधान के विरुद्ध यह अंतिम विधिपूर्ण उपचार है तथा यह कि मानव विचक्षणता सदैव ही ऐसा रास्ता निकाल

सकती है जिसके द्वारा अल्पमत (करदाता) अत्याचारपूर्ण करों से बच सकता है।"

इस संवाददाता का उत्तर एक ऐसे संवाददाता ने दिया जिसने पूर्वकथित संवाददाता द्वारा कर परिवर्जन की प्रतिरक्षा को "कर परिवर्जन की कला को राजनीतिक कुर्बानी के नैतिक स्तर तक उठाने और हमारे आधुनिक कर परिवर्जकों को 'हैम्पडेंस' बनाने का एक मनोरंजक प्रयास बताया।" हम भी यह नहीं कह सकते कि हमारे कर परिवर्जक, नमक-कर के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए "डांडी यात्रा" करने वाले गांधी जी हैं।

45. **आय-कर आयुक्त, गुजरात** बनाम **ए० रमन एंड कम्पनी**[1] **में**, न्या० सीकरी, रामस्वामी और अपनी ओर से निर्णय सुनाते हुए न्या० जे० सी० शाह ने वैस्ट मिनिस्टर और फीशर्स एक्जीक्यूटर्स के मामलों में व्यक्त किए गए विचारों को लगभग शब्दतः दोहराते हुए यह कहा कि—

> "वाणिज्यिक क्रियाकलापों को इस प्रकार व्यवस्थित करके कर-दायित्व का परिवर्जन, कि कर का भाग बंट जाए, प्रतिषिद्ध नहीं है। कोई करदाता, इससे पूर्व कि उसे आय प्रोद्भूत होती है, उस (होने वाली आय) को अंतरित करने की युक्ति का सहारा ले सकता है। इस युक्ति की प्रभावशीलता नैतिकता के आधारों पर निर्भर नहीं करती अपितु आय-कर अधिनियम के प्रवर्तन पर निर्भर करती है। कराधान संबंधी कानूनों में, शास्ति के डर के सिवाय, विधायी व्यादेश का उल्लंघन बेशक न किया जा सके, किंतु इसे विधिपूर्ण रूप से प्रवंचित किया जा सकता है।"

इसी न्यायाधीश ने न्या० रामास्वामी, ग्रोवर और अपनी ओर से निर्णय सुनाते हुए **आय-कर आयुक्त, गुजरात** बनाम **खरबाड़**[2] में वैस्ट मिनिस्टर के मामले का अभिव्यक्त रूप से अनुसरण किया और यह मत व्यक्त किया था कि—

> "कराधान प्राधिकारी किसी व्यवहार से उत्पन्न होने वाले सही विधिक संबंध का अवधारण करने का हकदार है और निस्संदेह ऐसा करने के लिए आबद्ध भी है। यदि पक्षकारों ने विधिक संबंध को किसी युक्ति के द्वारा छिपाया है तो कराधान प्राधिकारियों के लिए उस युक्ति का रहस्योद्घाटन करने की और संबंध की सही प्रकृति का अवधारण करने की छूट है किंतु संव्यवहार के विधिक प्रभाव को

---

[1] 1968 (1) एस० सी० आर० 10.

[2] 72 आई० टी० आर० 603.

1985(4) eILR(PAT) SC 57

"संव्यवहार का सार" का अन्वेषण करके दूर नहीं किया जा सकता।"

46. हम समझते हैं कि हमारे लिए वैस्ट मिनिस्टर वाले सिद्धांत से उतने ही जोरदार रूप में विचलन करने का समय आ गया है जितना कि ब्रिटिश न्यायालयों ने किया है और न्या० शाह द्वारा तथा अन्य कई मामलों में व्यक्त किए गए ऐसे विचारों से अपने आपको अलग करने का समय आ गया है। कर परिवर्जन के कई बुरे परिणाम हैं। पहला तो अत्यधिक आवश्यक लोक राजस्व की पर्याप्त हानि है, विशेषकर हमारे जैसे लोक कल्याणकारी राज्यों में। इसके बाद बहुत अधिक काला धन जोड़ करके, जिससे सीधे ही मुद्रास्फीति बढ़ती है, देश की अर्थ-व्यवस्था को भारी गंभीर झटका लगता है। तत्पश्चात् कर परिवर्जक और उसके सलाहकारों, वकीलों तथा लेखाकारों के एक विशेषज्ञ दल के बीच और दूसरी ओर कर एकत्रकर्ता और संभवतः उसके कम चतुर सलाहकारों के बीच एक शास्वत संघर्ष में अंतर्वलित होने के कारण देश के कुछ बहुत ही उत्तम बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा (जैसा कि मास्टर शीट क्राफ्ट ने 18, मार्डन लॉ रैव्यू, 209 में बताया है) समुदाय को "व्यापक गुप्त हानि" होती है। और इसके बाद "उन व्यक्तियों के मन में अन्याय और असमानता की वह भावना है जो कि कर परिवर्जन उत्पन्न करती है, जो कर परिवर्जन द्वारा या तो लाभ उठाने के इच्छुक नहीं हैं अथवा असमर्थ हैं।" अंत में "चतुर कर परिवर्जकों द्वारा दिशाहीन और भद्र नागरिकों के कंधों पर कर-दायित्व के बोझ को अंतरित करने की नैतिकता (वस्तुतः अनैतिकता) का भी अंतिम प्रश्न है।" निस्संदेह, सामान्य मनुष्यों के लिए न्या० ऑम्स के उस मानसिक स्तर को प्राप्त करना बहुत कठिन है जिन्होंने यह कहा कि "कर असल में वह संदाय है जो हम सभ्य समाज को देते हैं। मैं कर संदाय करना पसंद करता हूं। इन करों के द्वारा मैं सभ्यता खरीदता हूं।" किन्तु निस्संदेह भारतीय न्यायपालिका के लिए भी वैस्ट मिनिस्टर के मामले के तथा कर परिवर्जन के लुभावने तर्क से अलग होने का समय आ गया है। अब हम एक ऐसे कल्याणकारी-राज्य में रहते हैं जिसकी वित्तीय आवश्यकताओं का, यदि हो सके तो विधि के समर्थन के द्वारा सम्मान करना होता है और इन्हें पूरा करना होता है। हमें इस बात को मान लेना चाहिए कि कराधान विधि के पीछे भी इतना ही नैतिक बल/अनुशासित है जैसी अन्य कल्याणकारी विधि के पीछे है; और यह कहना मात्र एक बहाना है कि कर परिवर्जन अनैतिक नहीं है और यह कि कर परिवर्जन कर के ईमानदारीपूर्ण संदाय करने की तुलना में कर परिवर्जन कम नैतिक स्तर की बात है। हमारी राय में किसी कराधान कानून का निर्वचन करने का सही तरीका कर परिवर्जन की युक्ति पर विचार

1985(4) eILR(PAT) SC 57

करते समय, यह पूछना नहीं है कि क्या इन उपबंधों का अर्थान्वयन शब्दश: अथवा उदारतापूर्ण किया जाए और न यह पूछना है कि प्रश्नगत संव्यवहार अवास्तविक नहीं है और कानून द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं है, अपितु यह पूछना है क्या संव्यवहार कर परिवर्जन की एक युक्ति है, और क्या संव्यवहार ऐसा है कि न्यायिक प्रक्रिया इसे अपना अनुमोदन दे सकती है। इस दृष्टिकोण का एक संकेत **वुड पालिमर लिमिटेड** बनाम **बंगाल होटल्स लिमिटेड**[1] के मामले में न्या० देसाई के निर्णय में पाया जाता है जहां कि विद्वान् न्यायाधीश ने कम्पनियों के समामेलन को मंजूरी देने से इसलिए इंकार कर दिया था क्योंकि ऐसे समामेलन के परिणामस्वरूप कर का परिवर्जन होगा।

47. विधानमंडल से मध्यक्षेप करने और कर परिवर्जन की प्रत्येक युक्ति तथा स्कीम पर ध्यान देने की आशा करना न तो उचित ही है और न वांछनीय। कर परिवर्जन की नई और कुतर्कपूर्ण विधिक युक्तियों की प्रकृति का अवधारण करना और इस बात पर विचार करना न्यायालय का कर्त्तव्य बन जाता है कि क्या ऐसी युक्तियों द्वारा उत्पन्न की गयी स्थिति के निर्वचन की विकासशील तकनीकों की सहायता से विधिमान्य विधान से संबंधित किया जा सकता है, जैसा कि रामसे, बर्मा आॅयल और डाउसन के मामलों में किया गया था—इन युक्तियों का रहस्योद्घाटन करने के लिए कि ये युक्तियां क्या हैं और इन्हें न्यायिक फायदा देने से इन्कार करना न्यायालय का कर्त्तव्य है।

48. हम न्या० रंगनाथ मिश्र के इस निर्णय से सहमत हैं कि अपील खारिज की जानी चाहिए।

अपील खारिज की गयी।

श०

---

[1] 40 कम्पनी केसिज 597.